प्रकाशक—

पं० शिवशंकर मिश्र

सञ्चालक—

सरस्वती सदन

१२।१ चोरबगान लेन, कलकत्ता।

पुस्तक मिलनेके पते ।

कलकत्ता—प्रकाशक, १२।१ चोरबगान लेन

पाठक एण्ड कम्पनी, १२।१ चोरबगान लेन ।

ललित प्रेस, १७।A मदनमित्र लेन,

'मतवाला' कार्यालय, २३, शंकरघोष लेन,

निहालचन्द एण्ड को, १ नारायणप्रसाद बाबू लेन

हिन्दी पुस्तक एजन्सी, १२६ हरीसन रोड़

हिन्दी साहित्य भवन, कूकबिल्डिंग, हरीसन रोड़

वेङ्कटेश्वर बुकडिपो, हरीसन रोड़

बनारस—लहरी बुकडिपो-बुलानाला

उपन्यास वहार आफिस राजघाट

मनमोहन पुस्तकालय, नीचीबाग

बनारसी प्रसाद बुकसेलर, कचौड़ी गली

मास्टर खिलाड़ीलाल संस्कृत बुकडिपो

भार्गव बुकडिपो, चौक

हिन्दी साहित्य मन्दिर, चौक

लखनऊ—गंगापुस्तकमाला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद

पटनाजंकशन—सरस्वती भण्डार,

राजेश्वरी प्रसाद बुकसेलर

कन्हैयालाल बुकसेलर चौक-पटना सिटी

मुंगेर—गोविन्दप्रसाद एण्ड सन्स

मिश्रीलाल बुकसेलर

भागलपुर—शिवजतन पाण्डेय

लहरिया सराय—हिन्दी पुस्तक भण्डार

दरभङ्गा—कन्हैयालाल कृष्णदास बुकसेलर

मुजफ्फरपुर—वर्मन कम्पनी, पुरानी बाजार

मथुरा—बाबू किशनलाल, बम्बई भूषण प्रेस

श्यामलाल हीरालाल, श्यामकाशी प्रेस

फेन्ड एण्ड कम्पनी

क्षेत्रपाल शर्मा, सुख सञ्चारक कम्पनी

गया—रामसहाय लाल बुकसेलर

इलाहाबाद—साहित्य भवन लिमिटेड

चाँद कार्यालय

साहित्य सदन

राष्ट्रीय सदन

गोरखपुर—हनुमानदास गयाप्रसाद

मथुराप्रसाद किशनचन्द, रेतीचौक

आरा—आर्यसाहित्य पुस्तकालय, फुलट्टी बजार

कन्हैयालाल एण्ड सन्स

साहित्यरत्न भाण्डार

बाबूराम गुप्त ओ० जे० प्रेस

दिल्ली—नारायणदास जंगलीमल

इम्पीरियल बुकडिपो

जगन्नाथ लक्ष्मीनारायण, बड़ादरीबा

बरेली—राधेश्याम कथावाचक

जे० के० एण्ड सन्स

आर्यग्रन्थ रत्नाकर

शाहजहाँपुर—बद्रीप्रसाद मुरलीधर, बहादुरगञ्ज

इन्द्रजीत लक्ष्मीधर आर्य बुकसेलर

कानपुर—चुन्नीलाल गौड़, गौड़ पुस्तकालय चौक

प्रकाश पुस्तकालय; फीलखाना

झांसी—गौरी शंकर ब्रदर्स, सईयर गेट

अमृतसर—रामदेव रामदास बज़ाज बाजार

तीरथराम जोशी

लाहौर—लाजपतराय पृथ्वीराज साहानी, लाहौरी गेट

नारायणदास सहगल एण्ड सन्स

राजपाल, आर्य पुस्तकालय सरस्वती आश्रम

मोतीलाल बनारसीदास सैद मीठा बाजार

जे० एस० सन्तसिंह एण्ड सन्स

मेहरदास लक्ष्मणचन्द बुकसेलर

पिण्डीदास बुकसेलर, ग्वालमण्डी

पुरी ब्रदर्स, कचहरी रोड

मिरजापुर—पण्डितराम बुकसेलर, ढुंढी कटरा

जबलपुर—मिश्र बन्धु कार्यालय

लोकमान्य पुस्तक भण्डार

बम्बई—हिन्दीग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय।

गान्धी हिन्दी पुस्तक भण्डार, कालबादेवी रोड़

आरा—सहदेव प्रसाद बुकसेलर बाबू बजार

सीकर—बाबू हरदत्तराय सिंहानिया, रामगढ़

गुजराँवाला—हरनाम पुस्तकालय, महरायां वाली गली

शिमला—कालीचरण स्टोर्स

हरिद्वार—सरस्वती पुस्तकालय कनखल

बस्ती—पं० काशीनाथ सरजूप्रसाद

सहारनपुर—सर्व हितैषी व्यापार मण्डल

बड़ौदा—महेन्द्र प्रताप कम्पनी, कारेली बाग

जयदेव ब्रदर्स

हरदोई—दीन दयाल मिश्र

वक्तव्य

सम्प्रति भारतवासियोंका दाम्पत्य-जीवन बड़ा ही दुःखमय और विश्रृंखलित हो रहा है। लोगोंने अपना आश्रम-धर्म भुला दिया है। स्त्रियाँ विलासकी सामग्री और वीर्यपात एक प्रकारका सुलभ आनन्द समझा जाने लगा है। सर्वत्र बाल विवाहकी प्रथा प्रचलित है। विवाह होनेपर छोटी अवस्थासे ही नवदम्पति सहवास करने लगते हैं। इसके फलस्वरूप स्वल्पकालमें ही अनेक सन्तानोंसे उनका घर भर जाता है। विवाह किस अवस्थामें करना चाहिये, सहवास किस समय करना चाहिये, अच्छी सन्तान किस प्रकार उत्पन्न करनी चाहिये—इन सब बातोंका ज्ञान न होनेके कारण जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह भी चिररोगिनी, अल्पायु, निस्तेज, दीनहीन और अकर्मण्य होती है। ऐसी परिस्थितिमें माता पिताका यौवन और स्वास्थ्य नष्ट होने तथा देशकी दरिद्रता बढ़नेके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता। प्रस्तुत पुस्तकमें इन्हीं सब बातोंपर विचार किया गया है और दाम्पत्य-जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सकता है, यह बतलानेकी चेष्टा की गयी है। हिन्दी-साहित्यमें यद्यपि कुछ पुस्तकें निकली हैं, तथापि एक प्रकारसे इस विषयकी पुस्तकोंका अभाव है। उसी अभावकी यत्किञ्चित पूर्ति करनेके लिये हमने दाम्पत्य-ग्रन्थावली प्रकाशित करना स्थिर किया है। प्रस्तुत पुस्तक उसीका प्रथम पुष्प है।

कुछ लोग इस विषयको अश्लील समझते हैं, परन्तु हमें वैसा माननेका कोई कारण नहीं दिखलाई देता। हमने यथासाध्य इसे शिष्ट भाषामें लिखनेकी चेष्टा की है, ताकि आबाल-वृद्ध-वनिता इसके पठनसे लाभ उठा सकें। यदि एक भी भारतवासीका दाम्पत्य-जीवन इसके पठनसे सुधर सका, तो हम अपने परिश्रमको सफल हुआ समझेंगे।

—लेखक।

विषय-सूची

दाम्पत्य-विज्ञान

किशोरावस्था और यौवन

ठीक उस तरह, जिस तरह किसी इमारतको वनानेके लिये नीवकी आवश्यकता पड़ती है अथवा किसी गाड़ीको गतिशील करनेके लिये पहियों की आवश्यकता होती है, उसी तरह गृहस्थीको सुसम्पन्न वनानेके लिये दाम्पत्य-जीवनको आवश्यकता है। जवतक मनुष्यका दाम्पत्य-जीवन नहीं आरम्भ होता, तवतक उसका जीवन अपूर्ण रहता है—तवतक वह इस संसारकी गतिका पूर्ण सहायक नहीं हो सकता। त्यागी, संन्यासी अथवा

उन महापुरुषोंकी बात हम नहीं कह रहे हैं, जिन्होंने इस जगतको मिथ्या समझकर, इस भव-जालसे अपना सम्बन्ध ही त्याग दिया है। हमारा यह कथन उनके लिये है, जो इस जगतमें रहकर, जगतके सब कार्य चलाते हुए, ईश्वरकी सृष्टिकी वृद्धिमें उसका हाथ बटाना चाहते हैं। सारांश यह, कि दाम्पत्य-जीवन उनके लिये परम आवश्यक है, जो इस जगतमें अपनी स्थिति सुचारु बनाना चाहते हैं और जो सदा प्रकृतिसे युद्ध करनेके लिये तैयार रहते हैं। पर यह दाम्पत्य-जीवन क्या है? और क्योंकर इसका आरम्भ होता है तथा यह कभी सुखकर और कितनी ही अवस्थाओंमें एकदम असह्य दुःखकर कैसे हो जाता है—प्रस्तुत पुस्तक का यही विषय है और इससे सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातोंपर इसमें विचार किया गया है।

अंग्रेजोंके विख्यात लेखक स्माइल्स (Smiles) का कथन है, कि मनुष्य अकेला रह ही नहीं सकता—उसका अकेला—एकान्त-जीवन उसके लिये एक भार रूप है। Man can not live alone for himſelf. इस अवस्थामें, जब मनुष्य अकेला रह ही नहीं सकता है, तो उसके लिये एक ऐसे साथी, संगी, सहचर या बन्धुकी परम आवश्यकता है, जो उसके सुख-दुःख, आपद्-विपद्, अच्छे-

बुरे-सवमें सहायक हो। इतना ही नहीं, इससे भी बढ़कर, एक उद्देश्य और भी उत्पन्न हो जाता है। अच्छे-बुरे, आपद्-विपद् या सुख-दुःखमें पुरुषका पुरुष बन्धु भी हो सकता है—यदि एक पुरुषका एक पुरुष बन्धु मिल गया, तो क्या उसका दाम्पत्य-जीवन आरम्भ हो जायगा? नहीं, क्योंकि दाम्पत्य-जीवनके लिये, एक ऐसे साथीकी आवश्यकता है, जो उसके सभी कामोंका साथी हो, जिसके द्वारा इस संसार—जगतकी प्रगतिमें सहायता मिले। अतः दाम्पत्य-जीवनकी व्याख्या इस भाँति की जा सकती है, कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सब कर्मोंका जो सहायक हो, वही पूरा बन्धु है और वह पूर्ण बन्धु, पुरुष नहीं बल्कि स्त्री ही हो सकती है। हमारे शास्त्रकारोंका तो स्त्रीजातिके सम्बन्धमें स्पष्ट मत वर्त्तमान है, कि—

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री भार्य्या च षड्गुण्यवती सुदुर्लभाः॥

अर्थात् स्त्री एक ऐसी संगिनी हैं, जो परामर्शमें तो गृहराज्य, जिसका राजा पुरुष है, उसकी वह मन्त्री है, काम करनेके समय दासी, खिलानेके समय माता, और सोनेके समय रम्भा जैसी मदन-क्रीड़ा-सहचरी। बताइये, इससे बढ़कर साथी और कौन हो सकता है? अतः यह

सिद्धान्त निकला, कि स्त्री-पुरुषकी एक सम्मिलित जीवन-यात्राका ही नाम दाम्पत्य-जीवन है।

दाम्पत्य-जीवन सुखोंकी खान और सुचारु सम्पादन न होनेपर दुःखोंका आगार है। ठीक एक टमटमवाली दशा समझ लीजिये—जिस तरह दो पहिये की गाड़ीका एक पहिया भी अगर बिगड़ गया, तो वह गाड़ी बेकार है, उसी तरह इस गृहस्थी रूप दुपहिया गाड़ीके पुरुष अथवा स्त्री इन दोनोंमेंसे एक पहिया भी यदि बिगड़ा, तो गृहस्थी रसा-तलको पयान कर जायगी। ऐसा क्यों होता है—यह बातें अगले अध्यायोंमें आपको मिलेंगी, हम तो अभी और भी पीछे ही लौटकर अपने पाठकोंको यह बताना चाहते हैं, कि इस दाम्पत्य-जीवनका आरम्भ और पूर्वाभास कैसा होता है तथा उसमें और क्या क्या रहस्य छिपे रहते हैं, जिनके कारण दाम्पत्य-जीवन सुखकर या दुःखदायी हो सकता है।

दाम्पत्य-जीवनका आरम्भ ठीक ठीक समझनेके लिये, हम उस अवस्थासे अपना कथन आरम्भ करते हैं, जब कि लड़कपन बीत जाता है और किशोरावस्था अर्थात् वह अवस्था आरम्भ होती है, जब शरीर पुष्ट होने लगता है तथा बालक-के सभी अवयव एक प्रकारसे शक्ति-सम्पन्न होने लगते हैं। हम इस अवस्थाका आरम्भ तेरह वर्षकी अवस्थासे करते हैं।

इस उम्रमें आकर मनुष्यके अवयवोंकी पुष्टिके साथ ही साथ मन भी पुष्ट होने लगता है और मस्तिष्क भी विशेष ग्रहण-शील तथा शक्ति-सम्पन्न होने लगता है। सारांश यह, कि यह वह अवस्था है, जब हमारा विकास आरम्भ हो जाता है। वैद्य-शास्त्रकारोंका कथन है, कि इस उम्रमें आनेपर वीर्य उत्पन्न हो जाता है, इन्द्रियां उत्तेजित होने लगती हैं और मनोभावोंमें चञ्चलता उत्पन्न हो जाती है।

जब बालक इस अवस्थामें पहुंचता है, तब वह देखता है, कि उसके सभी अवयवोंमें एक प्रकारका स्फुरण आ गया है। यह स्फुरण या तेजी प्राकृतिक होती है। इसमें अस्वाभाविकता बिलकुल नहीं। इसका कारण यह है, कि जब शरीरमें वीर्य उत्पन्न होता है, तब सहज ही मन एक प्रकारका वह सुख और वह तेज अनुभव करने लगता है, जो अबतक कभी न हुआ था। हमारे कथनका यह तात्पर्य नहीं है, कि यह काम बारह-तेरह वर्षकी अवस्थामें ही पूर्ण हो जाता है, बल्कि ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों त्यों यह भी होता जाता है और मानसिक चञ्चलताकी गति भी तेज होती जाती है।

यह बात केवल किशोर पुरुषमें ही नहीं, बल्कि स्त्री—

किशोरीमें भी दिखाई देती है। प्रकृतिका नियम कुछ ऐसा ही है। इस अवस्थामें आनेपर, दोनोंकी ही एक सी दशा हो जाती है। यदि पुरुषकी किशोरावस्था कुछ विलम्बसे आती है, तो लड़कियोंकी उससे कुछ शीघ्र ही आ जातो है। एक बात और भी है—बालकके लिये दौड़-धूप, खेल कूद तथा चिल्लाना और जोरसे बोलना हितकर है। इससे उसका मन खुलता है और शरीर पुष्ट होता है। बालिकाओंके सम्बन्धमें भी यही बात है; परन्तु जो बालिकायें पुरुषोचित खेलकूद या व्यायाममें संलग्न रहती हैं, उनका विकास अति शीघ्र होता है। उनके मनकी चञ्चलता अति वेगसे बढ़ती है और वे किशोरावस्थाको पारकर यौवनावस्थामें भी अति शीघ्र जा पहुँचती हैं। इसीलिये, बालिकाओंके खेलकूद तथा व्यायाम भी अन्य प्रकारसे ही चुने गये हैं।

हाँ, तो इस किशोरावस्थामें आनेपर मनकी गति जब बढ़ती है, शरीर तथा इन्द्रियाँ जब पुष्ट होने लगती हैं, जब शरीरमें धातु बढ़ जाती है—यह न समझना चाहिये, कि इस अवस्थाके पहले शरीरमें वीर्य था ही नहीं,—था अवश्य, पर उसमें तेज नहीं था, उसमें गति-शीलता न थी—तब किशोर या किशोरी स्वाभाविक ही इस बातका अनुभव करते हैं, कि यह क्या और क्यों हो रहा है? बारंबार यह

स्फुरण क्यों होता है? मन रह रहकर किसी अप्रत्याशित, अवाञ्छित पदार्थको क्यों खोजने लगता है?—

यह अवस्था बड़ी ही पिच्छिल—फिसलनेवाली होती है। कोई कोई इसे यौवनावस्था भी कह देंगे—आजकल भारतमें विवाहप्रथा जिस ढंगसे प्रचलित हो रही है, उसपर विचारकर, लोग इसे यौवनावस्था ही कहेंगे, पर हम यह माननेको तैयार नहीं हैं! हम इसे तबतक यौवनावस्था न कहेंगे, जबतक कि शरीरका—इन्द्रियोंका और मनका पूर्ण विकास न हो जाये।

बालक बालिकाओंके माता पिता या अभिभावक इसी अवस्थाको उनकी यौवनावस्था समझकर, उन्हें यदि दाम्पत्य जीवनमें लगा दें, यदि इस अवस्थामें उनकी रक्षा न कर, उन्हें उस पथका अधिकारी बना दें, जो यौवन प्राप्त होनेपर उचित है, तो इससे वे क्या हानि कर बैठगे और उनका दाम्पत्य-जीवन कैसा दुःखदायी हो जायगा, यह बात तो आपको आगे चलकर मालूम होगी। हम इस अध्यायमें इतना ही कहेंगे, कि इस अवस्थामें इन्द्रिय उत्तेजन और मनकी चञ्चलता आरम्भ हो जाती है। किशोर किशोरी उस स्वप्न राज्यमें प्रवेश करना आरम्भ कर देते हैं, जो दाम्पत्य-जीवनका श्रीगणेश है।

यही अवस्था दाम्पत्य-जीवन-यात्राको सुखमय या दु:खमय बनानेके यन्त्रके समान है। इसी अवस्थामें संगति, परिस्थिति, पारस्परिक सम्बन्ध और वायुमण्डलका विशेष प्रभाव होता है। यही वह अवस्था है, जब किशोर किशोरियोंके अभिभावकोंके सम्मुख एक अति वृहत कर्त्तव्य उपस्थित हो जाता है, यही वह अवस्था है, जिसमें संगतिका ऐसा प्रभाव पहुँचता है, जो समस्त जीवन यात्राकी गति ही बदल देता है। इसीलिये, भारतके उन्नतकालमें, किशोर वयस्कोंको गुरुगृहमें, बाहरके हानिकर वायुमण्डलसे दूर, एकान्त, पवित्र स्थानमें यह समय व्यतीत करनेका नियम था। यही वह अवस्था है, जब परम तेजस्वी, शान्त-शील, ब्रह्मचारी अथवा दिव्य दर्शी तपस्वी गुरुके यहाँ रहकर, बालक इस घोर उपद्रवमयी अवस्थाको शान्त भावसे व्यतीत कर देते थे, यही वह अवस्था है, जब ऋषिकुल अथवा गुरुकुलोमें रहकर, किशोरवयस्क बालक उन कलाओंको हस्तगत करते थे, जो उनके जीवन-यात्राकी संगिनी बनकर उन्हें उच्चसे उच्च ध्येय और उद्देश्यपर पहुँचा देती थीं। हा! आज वे दिन कहाँ गये? सारांश यह, कि यही वह अवस्था है, जब मनकी गतिको रोककर, अपनेको सब ओरसे बचाकर, लोगोंको विद्याध्ययन तथा शिक्षा प्राप्त करनेमें व्यतीत कर देना

चाहिये। पर जिस अभागे देशमें अब बारह वर्षकी बालिका दो सन्तानोंकी जन्मदाता तथा सोलह वर्षका पुरुष दो सन्तानों-का पिता होने लगा है, वहाँ इस किशोरावस्थाके नियमोंका पालन तो एक विडम्बना-मात्र रह गया है।

किशोरावस्थाकी स्वाभाविक गति चञ्चल है। जिस तरह पवनके झकोरसे वृक्ष हिल उठता है, अथवा एक साधारणसा कम्पन होनेसे समस्त पर्वत-ग्राम कम्पित हो जाता है, उसी तरह इस किशोरावस्थामें जरा भी मनोवृत्ति-योंमें धक्का लगनेसे—यह धक्का चाहे परिस्थितिका हो या संगतिके प्रभावका—किशोर किशोरियोंके गिर जानेका भय रहता है, क्यों कि मनोवृत्तियोंपर अधिकार रखने या दमन करने अथवा उनको किसी एक लक्ष्यकी ओर परिचालित करनेकी शक्ति उस समय उनमें नहीं रहती। यही कारण है, कि इस अवस्थामें विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

क्रमशः किशोर-किशोरियाँ ज्यों ज्यों अपनी जीवन-यात्रामें अग्रसर होती जाती हैं—ज्यों ज्यों उनकी उम्र बढ़ती जाती है, त्यों त्यों वे इन मनोभावोंके भीतर अग्रसर होते जाते हैं, उनकी प्रकृति, उनका मन—एक वह पदार्थ खोजने लगता है, जिसको उसका प्रकृत साथी कह सकते। इस तरह यह अवस्था क्रमशः यौवनमें जा पहुँचती है।

—दाम्पत्य-विज्ञान—

यौवनावस्थामें शरीरके सभी अवयव परिपुष्ट हो जाते हैं, मनोभाव साथ ही साथ अधिक तीव्र, अधिक चञ्चल और अधिक वेग-शील हो जाते हैं। यह वह अवस्था है, जब मनुष्यका शरीर पूर्णता प्राप्त करता है। जिस तरह ऋतुराज वसन्तका आगमन होनेपर समस्त प्रकृति एक अपूर्व मनोहर वेश, एक अलौकिक प्रभा और एक असाधारण शोभा धारण करती है, ठीक वैसे ही मानव शरीर भी धारण करता है। ठीक उसी तरह मानव शरीरमें भी वैसा ही एक प्रकारका उन्माद उत्पन्न हो जाता है। यह उन्माद या प्रवृत्ति मनुष्यको जिस साथीकी आवश्यकता पैदा करती है, वह स्त्री है। इसी स्थानसे दाम्पत्य-जीवनका आरम्भ किंवा सूत्रपात होता है।

यही वह अवस्था है, जब मनुष्यके लिये विवाह बन्धनमें बँधना आवश्यक है। पुरुषकी यह अवस्था यदि बीस या पच्चीस वर्षकी उम्रमें आरम्भ होती है तो भारतकी स्त्रियाँ, इसे अपनी पन्द्रह या सोलह वर्षकी उम्रमें ही प्राप्त कर लेती हैं। इस अवस्थामें दोनोंको अपने अपने साथीकी आवश्यकता आ पड़ती है और इसी अवस्थासे उनका दाम्पत्य-जीवन आरम्भ होता है।

पुरुष और स्त्रीके इस जोड़ेका नाम ही दम्पति है। जिस

समयसे दोनो विवाह सूत्रमें आबद्ध हो जाते हैं और जबसे उनका सम्बन्ध अविच्छिन्न रूपसे हो जाता है अथवा यों समझ लीजिये, कि जब पुरुष अपने गृहराज्यमें एक मन्त्री या गृहराज्यकी अधिष्ठात्री देवीको लाकर बैठा देता है—तभी से दाम्पत्य-जीवन आरम्भ होता है—और तबतक वर्त्तमान रहता है, जबतक उनका अस्तित्व लोप नहीं जाता

दाम्पत्य-जीवन मनुष्यमात्रके लिये आशास्थान होता है। सभी उसके सुखोंके लिये लालायित ही क्यों, व्याकुल बने रहते हैं। परन्तु ब्रह्मचर्यका अभाव, हस्तमैथुन और वीर्यस्राव प्रभृति दुर्व्यसन किंवा व्याधियाँ—तथा और कितनी ही बातें ऐसी हैं, जिनके कारण मनुष्यको उस स्वर्गीय सुखसे वञ्चित रहना पड़ता है। अगले अध्यायोंमें इन्हीं सब बातोंपर विचार कर हम उन उपायोंका उल्लेख करेंगे, जिनके अवलम्बनसे यह सुख अधिक सुलभ और मधुर बनाया जा सकता है।
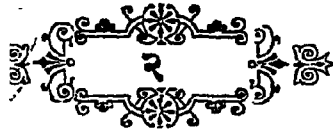
ब्रह्मचर्य्य

जिस ब्रह्मचर्यके धारणसे इच्छानुसार जीवनीशक्ति बढ़ाई जा सकती है, जिस ब्रह्मचर्यके अवलम्बनसे अलौकिक शक्ति प्राप्त हो सकती है, जिस ब्रह्मचर्यके प्रतापसे मनुष्य अपनी यथेच्छ उन्नति कर सकता है—नरसे नारायण तक हो सकता है, उस ब्रह्मचर्यका गुणगान करना किसी जड़ लेखनीका काम नहीं। ब्रह्मचर्य ही मनुष्यका प्राण, ब्रह्मचर्य ही मनुष्यका पौरुष और ब्रह्मचर्य ही मनुष्यका जीवन है। ब्रह्मचर्यकी महिमा अपरम्पार है। संक्षेपमें उसे वर्णन करनेकी चेष्टा गागरमें सागर भरनेके समान है।

हम पहले ही बतला चुके, कि किशोरावस्थामें पदार्पण करते ही समस्त इन्द्रियाँ चञ्चल हो उठती हैं। शरीरमें बल

और मनमें साहसका सञ्चार होता है। संसारके समस्त पदार्थोंमें वसन्तकालीन कुसुमित काननकी भाँति सर्वत्र नवीनता और रमणीयता दिखाई देने लगती है। मन नयी नयी तरंगोंसे भर जाता है। स्त्री और पुरुष एक दूसरेको स्नेहभरी दृष्टिसे देखने लगते हैं। वे इस वातका पता लगाने लगते हैं, कि संसारमें स्त्री और पुरुषोंका कैसा सम्बन्ध है—वे क्या करते हैं, कैसे रहते हैं। इस रहस्यका पता पाते न पाते उनपर यौवन अधिकार जमा लेता है और वे एकबार ही सांसारिक सुख भोग करनेके लिये व्याकुल हो उठते हैं।

यह सुखोपभोगकी लालसा न केवल पुरुषोंमें ही दिखाई देती है, बल्कि स्त्रियोंको भी व्याकुल बना देती है। स्त्री पुरुषका और पुरुष स्त्रीका प्रश्रय प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो उठता है। दोनों अपने अपने मनमें, न जाने कितनी बात सोचते हैं और कितने सुखोंकी कल्पना किया करते हैं। व्याह होनेपर क्या करेंगे, किस प्रकार रहेंगे, कैसे जीवन निर्वाह करेंगे—इन्हीं बातोंके सोच विचारमें वह तन्मय हो जाते हैं। स्त्री पुरुषके और पुरुष स्त्रियोंके ध्यानमें निमग्न रहते हैं। अन्तमें एक दिन उनकी वह आकांक्षा पूरी होनेका समय आ पहुंचता है। अपने अपने देश, कुल और जातिकी

रशमें अदा होनेपर दो भिन्न भिन्न हृदय अपनेको एक ही प्रणयसूत्रमें आबद्ध पाते हैं। उस समय उनके हृदय भावी सुखोंकी कल्पना कर आनन्दसे पुलकित हो उठते हैं—मन मत्त मयूरकी तरह नाचने लगता है। बस, दोनों निःसं-कोच भावसे दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण कर अपनेको धन्य समझने लगते हैं।

संसारमें हम सब लोगोंकी एकबार यही दशा होती है। हम सब लोग एकबार इन बातोंको अनुभव करते हैं। परन्तु उस समय हमें इस बातका ज्ञान नहीं होता, कि यह सब कुऋतुके बादलोंकी तरह असमयके ही विकार हैं। जिस तरह कच्ची भूखमें खा लेनेसे लाभके बदले हानि होती है, उसी तरह उचित समयके पहले इन्द्रिय परिचालन करनेसे स्वास्थ्य और यौवन मिट्टीमें मिल जाता है। परन्तु यह बातें हमें उसी समय मालूम होती हैं, जब हमारे सर्वनाशका समय समीप आ पहुँचता है। पहले तो हमें चारों ओर सब्ज बाग ही दिखाई देते हैं और दिखाये जाते हैं, परन्तु बादके मालूम होता है, कि हम पथभ्रष्ट होकर निर्जन मरु-भूमिमें आ पहुँचे हैं।

हमारे देशमें दाम्पत्य-विज्ञानकी शिक्षा बच्चोंको पहलेसे नहीं दी जाती। स्कूल, भूगोल और इतिहास रटानेके लिये

हैं। मास्टर अक्षर-ज्ञान सिखानेके लिये हैं। माता पिता इन बातोंको शिक्षा देना अनुचित और लज्जास्पद समझते हैं। फल यह होता है, कि दाम्पत्य-जीवनको सुखमय बनानेके लिये जिन बातोंका जानना परमावश्यक है, उनका उन्हें किञ्चित भी ज्ञान नहीं मिलता। अज्ञानताके कारण बहुधा वे ऐसी भूलें कर बैठते हैं, ऐसे अनर्थ कर डालते हैं, जिनके कारण उनकी जीवन धारा ही पलट जाती है। उन्हें अपने कृत-कर्मों के कारण आजन्म पश्चाताप करना पड़ता है। लाख चेष्टा करने पर भी फिर वे अपने जीवनको सुखमय नहीं बना सकते।

यदि एक बच्चेको यह न बतलाया जाय, कि आगको छूनेसे हाथ जल जाता है और उसे आगके साथ खेलनेके लिये छोड़ दिया जाय, तो उस बच्चेको अपना हाथ जलाकर यह शिक्षा ग्रहण करनी होगी, कि आगको छूनेसे हाथ जल जाता है अतः उसके साथ इस तरह न खेलना चाहिये। ठीक यही दशा हम लोगोंकी है। बिना किसी प्रकार की सूचना दिये ही, हमलोग दाम्पत्य जीवनका मजा लूटनेके लिये छोड़ दिये जाते हैं। हमलोग पहलेसे ही उसके लिये लालायित रहते हैं, पहलेसे ही ऐश आराम और चैनसे दिन काटनेकी बातें सोचा करते हैं, इसलिये बिना कुछ सोचे

विचारे ही उसे लूटनेके लिये टूट पड़ते हैं। परन्तु कुछ ही दिनोंमें हमें मालूम हो जाता हैं, कि यह तो लोहेके चने हैं। जिसको शरद्की शीतल चन्द्रिका समझ रक्खा था, वह ग्रीष्मका भयंकर दावानल है। जिस खीरको स सादी समझ रक्खा था वह बड़ी टेढ़ी है। उस समय उस जले हुए बच्चेकी तरह हमारा भ्रम दूर हो जाता है। दावानलमें झुलस जानेके बाद् हमें मालूम होता है, कि उस जलती हुई अग्निमें कूद् पड़ना हमारा काम न था। हमने बड़ी जल्द् बाजीसे काम लिया, बड़ा दुःसाहस किया। परन्तु अब सोचनेसे लाभ क्या? जिस प्रकार नीव टेढ़ी हो जाने पर फिर मकान सीधा नहीं हो सकता, उसी तरह अब हमारा जीवन भी सुखमय नहीं हो सकता। अब हमारी आकांक्षा पूर्त्ति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायगी। अब हमें लाचार होकर या तो क्षणिक, असार और पापपूर्ण कहकर दाम्पत्य-जीवनके सुखोंकी आशा ही छोड़ देनी होगी या अपने अनुभवोंके सहारे शेष जीवनको सुखमय बनानेकी चेष्टा करनी होगी।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि किसी कामको करनेके पहले उसका ज्ञान प्राप्त कर लेना परमावश्यक होता है। संसारमें सर्वत्र यही बात—यही नियम दिखाई देता है।

लोग सामने देख लेते हैं, तब कदम बढ़ाते हैं; परन्तु दाम्पत्य-विज्ञानके सम्बन्धमें सर्वथा विपरीतही बात दिखाई देती है। हमें अन्धकारमय शून्यमें ही कूदना पड़ता है। अपने निजी अनुभवसे ही शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। परन्तु वह शिक्षा प्राप्त करना क्या सहज है? कितना भयंकर पथ है? मार्गमें कितने प्रलोभन, कितने कांटे, कितने जाल बिछे रहते हैं? जरा भी चूके, कि सर्वनाश हुआ। इसीलिये कहते हैं, कि हथेलीमें जान लेकर हमें यह शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। हममेंसे बहुत ही कम —विरला ही यह शिक्षा प्राप्त कर सुरक्षित रूपसे बाहर निकलता है। अधिकांश उसी दावानलमें झुलस जाते हैं, असमयमें ही अपना स्वास्थ्य और यौवन खो बैठते हैं। इस शिक्षा प्राप्तिकी परीक्षामें जिसे जितनी ही सफलता मिलती है, उतना ही उसका जीवन चैनसे कटता है। जिन्हें सफलता नहीं मिलती, वे भाग्यको कोसते हुए मृत्युकी कामना करते हैं और अपने कृत कर्मोंके लिये पश्चाताप करते हुए उसकी शान्तिमयी गोदमें प्रश्रय ग्रहण करते हैं।

दाम्पत्य-जीवन इस तरह दुःखमय न हो जाय इसलिये, स्त्री पुरुषोंको पहलेसे ही दाम्पत्य-विज्ञानकी शिक्षा मिलनी चाहिये। उन्हें पहलेसे ही अपने भावी जीवनको सुखमय

बनानेके लिये तयारियाँ करनी चाहिये। उन तैयारियोंका ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य है। अपने आपको दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण करने योग्य बनाना—यही ब्रह्मचर्यका एकमात्र उद्देश है। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि पच्चीस वर्षकी अवस्थाके पहले पुरुष और सोलह वर्षकी अवस्थाके पहले स्त्रियोंको सांसारिक झमेलोंमें न पड़ना चाहिये। उस अवस्थामें दोनोंका वीर्य परिपक्व और अंग सुदृढ़ हो जाते हैं, अतः स्वास्थ्य नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं रहती और जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह सुन्दर, हृष्टपुष्ट और दीर्घायु होती है। इसलिये इस समय तक ब्रह्मचर्य व्रत अवश्य धारण करना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि दाम्पत्य जीवनकी मधुरता, वानप्रस्थाश्रमकी तपस्या और संन्यासाश्रमका ब्रह्मज्ञान-ब्रह्मचर्याश्रमके वीर्य रक्षण पर ही निर्भर करता हैं। इसलिये जो लोग ब्रह्मचर्यकी उपेक्षा करते हैं, वे अपने जीवनमें क्षण भरके लिये भी सुख और शान्तिका रसास्वादन नहीं कर पाते।

प्राचीनकालमें यहाँ आश्रम धर्म प्रचलित था। चार आश्रमोंमें ब्रह्मचर्याश्रम ही सर्व प्रधान और सर्व प्रथम था। उस समय ब्रह्मचारी गुरुके निकट किसी अरण्यके गुरुकुलमें जाकर रहता था और विद्याध्ययन करता हुआ ब्रह्मचर्य व्रतका

पालन करता था। सम्प्रति हमलोगोंने आश्रम धर्मको शायद् झूठा झमेला समझ कर जलाञ्जलि दे दी है। अब हम बचपनमें विद्याध्ययन अवश्य करते हैं, परन्तु वह एकान्त अरण्यके शान्तिमय गुरुकुलमें नहीं, बल्कि प्रवृत्तिमय नगरोंकी उच्च अट्टालिकाओंमें, जिन्हें लोग स्कूल और कालिजोंके नामसे सम्बोधित करते हैं। वहाँ अब ब्रह्मचर्य पालन करनेकी हमें कोई शिक्षा नहीं देता। चाहे हम ब्रह्मचारी रहें, चाहें दुराचारी बन जायें, कोई बोलनेवाला नहीं। अपने शरीरको बनाना या बिगाड़ना हमारे हाथकी बात है। हम चाहे वीर्य रक्षा करें चाहे अपना सर्वनाश करलें, कोई कुछ न कहेगा। उस समय हमारी अवस्था छोटी रहती है। भले और बुरेकी हमें पहचान नहीं। नयी उम्रकी नयी नयी उमंगें, बढ़ा हुआ दिल—बस अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्ति होते देख, हम अपना सर्वनाश कर लेते हैं। प्रकृत किंवा अप्रकृत, स्वाभाविक किंवा अस्वाभाविक—किसी एक प्रक्रिया द्वारा, जिसमें सुविधा हुई—हम अपने मनोविकारको शान्त करते हैं। हमें इसके लिये किसीको कुछ कहने या पूछनेका अधिकार नहीं।

प्राचीन कालमें यह सब न था। उन दिनों ब्रह्मचारी पर गुरुका कठिन नियन्त्रण रहता था। ब्रह्मचारीको यह

बात भली भाँति समझा दी जाती थी, कि "मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दु धारणात्"—वीर्यपात ही मनुष्यकी मृत्यु और वीर्य धारण ही मनुष्यका जोवन है। उन्हे बता दिया जाता था, कि वीर्य क्या पदार्थ है और उसके धारणसे क्या लाभ होता है। उन्हें सूचना दे दी जाती थी, कि वीर्य पात करना और मृत्युको निमन्त्रण देना बराबर है। परन्तु आज यह बातें बतलाना हमारे शिक्षागुरुओंके अधिकार की बात नहीं। अधिकांश माता पिता स्वयं इन बातोंको नहीं समझते और जो समझते हैं, वे बच्चोंको समझानेकी आवश्यकता नहीं समझते। ऐसी दशामें इन बातोंका सीखना, समझना और ज्ञान प्राप्त करना हमारे ही सिरपर आ पड़ता है। हमें चाहिये, कि इन विषयोंकी आलोचना कर हम समुचित ज्ञान प्रात कर लें, जिससे हमारा भावी जीवन दुःखमय न हो जाय।

प्राचीन कालमें ब्रह्मचर्याश्रम और उसके धर्म नियत थे। ब्रह्मचारीको किस प्रकार रहना चाहिये, किस प्रकार सोना बैठना और दिन बिताना चाहिये—आदि सभी बातें निश्चित थीं। परन्तु आजकलकी परिस्थिति उससे सर्वथा विपरीत है। अब पिछली बातोंका स्मरण करना भी अरण्य-रोदन समझा जाता है। आज हमें तपोवनकी पर्णकुटीके बदले

वस्तीमें रहना पड़ता है। यदि हम विद्याध्ययन और ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहें, तो वह भी हमें वहीं रहते हुए करना होगा। प्राचीनकालमें माता पिता और जन-समाजकी ओरसे इसके लिये जो सुविधायें दी जाती थीं, उनका मिलना असम्भव हो गया है। हमारे प्रत्येक कार्यमें, हमारी प्रत्येक वातमें—जमीन आसमानका अन्तर दिखाई देता है। मानो इस समय हम दूसरी ही दुनियामें वसते हैं, मानो वह वातावरण ही वदल गया है, इसलिये आज प्राचीन कालकी भाँति ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। फिर भी हम अपने पाठकोंके हितार्थ मुख्य मुख्य नियमोंको अंकित कर देना उचित समझते हैं। जो वच्चे समझदार हों, उन्हें स्वयं समझ कर और जो माता पिता समझदार हों उन्हें अपने बच्चोंको समझा कर इस व्रतका पालन करना—कराना चाहिये।

ब्रह्मचर्यके दो अङ्ग हैं—वीर्य धारण और विद्याभ्यास। विद्याभ्यास हमारा विवेच्य विषय नहीं, अतः उसके सम्वन्धमें हम विशेष कहना नहीं चाहते। हमारी न्याय शीला ब्रिटिश गवर्नमेण्टने जो शिक्षा प्रणाली नियत कर रक्खी है, उसीके अनुसार हमें शिक्षा मिलती है। शिक्षा प्राप्त कर हम कितने धर्मनिष्ट, विद्वान, विवेकी और सद्गुण

सम्पन्न बन जाते हैं—यह किसीसे छिपा नहीं। शायद ही ऐसा कोई भारतवासी हो जो इस शिक्षा प्रणालीको दोष पूर्ण न समझता हो। महात्मा गान्धी जैसे तपस्वी और न्यायनीतिज्ञ पुरुषने भी इसकी घोर निन्दाकी है अतः इस विषयमें विशेष कहना व्यर्थ है। परन्तु इतना तो हम अवश्य ही कहेंगे, कि जिस शिक्षासे हम स्वावलम्बी न बन सकें, हममें जातीयता और राष्ट्रीयताके भाव न जागरित हों, हमारा धर्मप्रेम वृद्धिगत न हो, हम जीवन-निर्वाहके लिये यथेष्ट धन भी न प्राप्त कर सकें, उस शिक्षाको शिक्षा ही न कहना चाहिये। हमें वही शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये, जिससे हम अपने पैरों खड़े हो सकें, स्वावलम्बन और वाणिज्य व्यवसाय द्वारा यथेष्ट धनोपार्जन कर अपना दाम्पत्य जीवन आनन्दसे बिता सकें। शिक्षा प्राप्त करने पर भी हमें परमुखापेक्षी रहना पड़े तो वह शिक्षा ही:व्यर्थ है।

ब्रह्मचर्यका दूसरा अंग है—वीर्य धारण। इसके सम्बन्धमें जितना ही कहा जाय उतना ही कम है। ब्रह्मचर्य ही तो एक ऐसी वस्तु है, जिसके द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-तीनों प्रकारकी उन्नति की जा सकती है। ब्रह्मचर्य ही वह वस्तु है, जो मनुष्यको अजर अमर बना सकती है। ब्रह्मचर्य ही वह वस्तु है,,

जिसके द्वारा मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर संसारको स्वर्गके रूपमें परिणत कर सकता है।

ब्रह्मचारीको अपने भोजनके सम्बन्धमें सदा सावधान रहना चाहिये। मद्य, मांस, गन्ध द्रव्य, माल्य और रसादि द्रव्योंका सर्वथा त्याग करना चाहिये। जो वस्तु स्वभावतः मधुर हो, परन्तु किसी कारणसे खट्टी हो गयी हो उसका भी सेवन न करना चाहिये। इन वस्तुओंके सेवनसे इन्द्रियाँ चञ्चल होती हैं और ब्रह्मचर्य नष्ट होनेके सम्भावना रहती है। पवित्र संकल्प, मातृभाव दृष्टि, सत्संग, सादगी, सद्ग्रन्थावलोकन निर्व्यसनता, नियमित व्यायाम, स्वाननिद्रा, अल्पाहार और कार्यशीलता प्रभृति कर्म ब्रह्मचारीके लिये परम आदरणीय और आचरणीय है। तैल मर्द्दन, आँखोंमें अञ्जन लगाना, पादुका व छत्र धारण करना, काम, क्रोध या लोभके वशीभूत होना, नाच देखना, गाना सुनना, बाजे बजाना, जूआ खेलना, वृथा बकवाद करना, दूसरोंके दोष दिखाना, मिथ्या वचन कहना, स्त्रियोंके प्रति कटाक्ष करना, उन्हें आलिङ्गन करना आदि सभी बातें ब्रह्मचारीके लिये त्याज्य हैं। उन्हें अकेले और ऐसी शैय्यामें सोना चाहिये, जो शरीरको अधिक आराम न दे सके। गुदगुदे गद्दोंपर सोनेसे भी दुर्भावोंका उदय होता है।

महर्षि पतञ्जलिने योग दर्शनमें लिखा है, कि "ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः" अर्थात् ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठासे परम शक्तिकी प्राप्ति होती है। प्राचीन कालमें महर्षि लोग इसी शक्तिको प्राप्त कर उन अलौकिक कार्यों को कर दिखाते थे, जिनके स्मरण मात्रसे दीन हीन भारत वासियोंके मृत कंकालमें आज भी प्राणका सञ्चार होने लगता है। इसी शक्तिको प्राप्त कर भीष्म पितामहने इच्छा मृत्यु प्राप्त की थी और शर शैय्यापर पड़े हुए, निर्वाणोन्मुख दशामें भी पवित्र ब्रह्म ज्ञान और धर्म तथा नीतिका उपदेश दिया था। वीर हनुमान और लक्ष्मणजीने भी इसी शक्तिको प्राप्त कर अलौकिक पराक्रम कर दिखाये थे।

वीर्य मनुष्यके शरीरका सर्वोत्कृष्ट सत्व है। उसीकी रक्षासे स्वास्थ्यकी रक्षा हुआ करती है। चिकित्सा शास्त्रका यह सिद्धान्त है, कि भुक्त अन्न पाकस्थलीमें जाकर पहले रस बनता है। रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य बनता है। अन्नसे वीर्य बननेकी इस प्रक्रियामें ठीक एक मासका समय लगता है। एक बिन्दु वीर्य चालीस बिन्दु रक्तके बराबर होता है। उसके एक एक कणमें सैकड़ों ऐसे जीवाणु या कीट होते हैं, जिनमें सन्तानोत्पादनकी शक्ति

विद्यमान रहती है। केवल इसी बातसे यह जाना जा सकता है, कि वीर्य कितना उपयोगी और कीमती पदार्थ है। वीर्य ही समस्त शरीरका प्राण रूप है। वीर्य धारण करनेसे प्राणकी पुष्टि, समस्त शरीरमें कान्ति और मानसिक शान्तिकी प्राप्ति होती है। वीर्यके नाशसे अनेक रोगोंकी उत्पत्ति होकर अन्तमें प्राण नाश होता है।

यदि दाम्पत्य जीवन आनन्दसे बिताना हो, तो ब्रह्मचर्य अखण्ड रखना चाहिये। ब्रह्मचर्यका पालन न करनेसे स्वप्नमें भी गार्हस्थ्य सुखकी प्राप्ति नहीं होती। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं, कि ब्रह्मचर्य दाम्पत्य जीवनका मूल किंवा आधार-स्तम्भ है। जिस तरह मूल नष्ट हो जाने पर वृक्षके शाखा और पत्र सुरक्षित नहीं रह सकते, उसी तरह ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाने पर दाम्पत्य-जीवनके सुखोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्यमें विघ्न बाधा पड़ जानेपर समूचे जीवनका क्रम इस तरह बिगड़ जाता है, कि फिर वह लाख यत्न करने पर भी ठीक नहीं होता।

पच्चीस वर्षकी अवस्था पर्यन्त, जो इस तरह ब्रह्मचर्य धारण कर दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण करते हैं, उन्हें कभी पश्चाताप नहीं करना पड़ता। न उनका स्वास्थ्य ही एका-एक नष्ट होता है, न वे असमयमें कालका ग्रास ही बनते

हैं। विवाह होनेके बाद भी जो लोग ऋतुकालके समय केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही स्त्री-संग करते हैं, उन्हें भी शास्त्रकारोंने ब्रह्मचारी ही माना है। ऐसे मनुष्य भी सदा सुखी रहते हैं और बहुत दिनोंतक जीते हैं।

ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है, कि यह जीवनमें किसी समयसे भी धारण किया जा सकता है। सोलह वर्षसे पच्चीस वर्षकी अवस्था तक धातु और रसोंकी उत्पत्ति विशेष रूपसे होती है, अतः उस समयका ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट माना गया है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि दूसरी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण ही नहीं किया जा सकता। भुक्त अन्न द्वारा वीर्य बननेकी उपरोक्त क्रिया वृद्धावस्था पर्यन्त समान रूपसे हुआ करती है, अतः किसी समय भी वीर्य रक्षाकर शारीरिक बल और पौरुष बढ़ाया जा सकता है। जैसे दूधमें घी और ईखमें रस छिपा रहता है उसी तरह रक्तमें वीर्य छिपा रहता है। स्वाभाविक किंवा अस्वाभाविक प्रकारसे इन्द्रिय परिचालन करने पर जैसे दूधको मथनेसे मक्खन निकलता है, उसी तरह रक्तसे वीर्य प्रस्तुत होता है। इन्द्रिय परिचालन करने पर ही वह वीर्याशयमें सञ्चित होकर अन्तमें बाहर निकलता है। साधारण :दशामें वह समस्त

शरीरमें व्याप्त रहता है। इसलिये जो लोग वीर्यका अपव्यय कर चुके हों, उन्हें भी हिंमत न हारकर ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये। इसके प्रतापसे अपनी अवस्था, शारीरिक स्थिति और खान पानके अनुसार वे पुनः शक्ति सञ्चय कर सकेंगे।

परन्तु ध्यानमें रखनेकी बात है, कि ब्रह्मचर्यका पालन मन, वचन और कर्म-तीनों द्वारा होना चाहिये। शारीरिक ब्रह्मचर्यकी अपेक्षा मानसिक ब्रह्मचर्य विशेष महत्व रखता है। यदि कोई वाह्य नियमोंका ठीक ठीक पालन करता हो, उसके आचार ब्रह्मचारी ही की तरह विशुद्ध हों—इन्द्रिय परिचालनादि न करता हो, किन्तु यदि उसके विचार कुत्सित रहते हों, तो उसे हम कदापि ब्रह्मचारी नहीं कह सकते। इस अवस्थामें वह अधिक दिनोंतक वाह्यनियमोंका पालन भी नहीं कर सकता। विचार दूषित होनेके कारण उसके आचार भी ठीक न रह सकेंगे। प्रमेह और वीर्यस्राव प्रभृति कुत्सित विचारोंके कारण उत्पन्न होनेवाली व्याधियोंके कारण उसका ब्रह्मचर्य अवश्य नष्ट हो जायगा। इसी लिये ब्रह्मचारीको अपने आचारकी अपेक्षा विचार पर अधिक नियन्त्रण रखना चाहिये। बिना मानसिक ब्रह्मचर्यके शारीरिक ब्रह्मचर्य निभ: हो नहीं सकता।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो जितने ही परिमाणमें

ब्रह्मचर्य धारण करेगा, वह उतने ही परिमाणमें अधिक शक्ति शाली होगा। जिसका एकबार भी ब्रह्मचर्य भंग हुआ हो, वह अखण्ड ब्रह्मचारीके मुकाबलेमें कदापि नहीं ठहर सकता। परन्तु इससे किसीको निराश न होना चाहिये। "जबसे जाना तबसे माना" इस सूत्रके अनुसार जिस दिनसे इच्छा हो उस दिनसे ब्रह्मचर्य पालन करने लगना चाहिये। जबतक इसका पालन नहीं किया जाता तभी तक यह कठिन मालूम होता है, परन्तु एकबार दृढ़ स'कल्प कर लेनेके बाद फिर कोई कठिनाई नहीं मालूम होती। केवल आहार, विहार और विचारों पर अंकुश रखना होता है। मनको बेलगाम घोड़ेकी तरह छोड़ देनेसे भी हृदयमें दुर्भावोंका उदय होता है और किसी न किसी तरह ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है, इसलिये इस विषयमें ब्रह्मचारीको खूब सावधान रहना चाहिये। यह काम भी नित्यके अभ्याससे सहज बनाया जा सकता है। ब्रह्मचारोको ऐसा कोई कार्य न करना चाहिगे, जिसमें ब्रह्मचर्य नष्ट हो। आहार विहारके सम्बन्धमें भी खूब सावधान रहना चाहिये। ऋषि मुनियोंने इस सम्बन्धमें बड़े कड़े नियम बना रक्खे थे। वैसा करनेका एक मात्र उद्देश यही था, कि किसी प्रकारका भी मनोविकार ब्रह्मचारीके

हृदयमें न उत्पन्न हों। ब्रह्मचारीको यह सब बातें भली भाँति समझ रखनी चाहिये। पुरुषोंके वीर्य और स्त्रियोंके रज पर उनके आहार विहारका कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, यह बतलाते हुए डाक्टर ट्राल लिखते हैं कि—

The more nearly the parties live in accordance with physiological habits, especially in the matters of food, clothing and excercise, the more nearly normal will be their sexual inclinations, and the less need have they of subjecting their desires to the restraints or control of reason.

अर्थात्—अपनी शारीरिक अवस्थानुसार खासकर खानपान आहारविहार तथा व्यायामके सम्बन्धमें लोग जितनाही नियमित रहते हैं, उतनाही उनकी कामेच्छा संयत रहती है और उन्हें आत्मसंयम तथा इन्द्रिय निग्रहकी कम आवश्यकता पड़ती है।

जो लोग समझदार हैं वे स्वयं समझकर ब्रह्मचर्यके इन नियमोंका पालन कर सकते हैं, परन्तु जो नादान हैं, जिन्होंने किशोरावस्थामें अभी हालहीमें पदार्पण किया है, वे इन बातोंको नहीं समझ सकते। वीर्यपात करने पर एक ओर अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्ति होती है, दूसरी ओर ब्रह्मचर्य धारण करने पर आहार विहार पर नियन्त्रण रखनेके कारण

मनः कष्ट होता है। एक ओर भोग है और दूसरी ओर त्याग है। भोगका आनन्द क्षणिक भले ही हो, परन्तु तुरन्त मिलता है; त्यागका तत्काल कोई फल नहीं दिखाई देता। ऐसी दशामें नवयुवकोंका भोगकी ओर मुड़ जाना स्वाभाविक ही है। उन्हें उस क्षणिक सुखका अन्तिम दृश्य—भयंकर परिणाम और उस त्यागकी महिमा कौन समझाता है? अपने आप वे यह सब समझ भी कैसे सकते है? यह सब बतलाना, समझाना और ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन कराना, बच्चोंके माता पिता, शिक्षागुरु और हितैषियोंका ही काम है। यदि वे इसके लिये चेष्टा कर और बच्चोंके आचार विचार तथा आहार विहार पर ध्यान रक्खें, तो वे आसानीसे ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं। अन्यथा उनकी असावधानीके कारण बच्चे अस्वाभाविक उपायोंका अवलम्बन कर अपना सर्वनाश कर लेते हैं। सच पूछिये, तो उनके इस कार्यके लिये माता पिता ही जिम्मेदार हैं। उनका निरीक्षण न रहने पर बच्चे किस प्रकार अत्याचार करते हैं, किस प्रकार वीर्यका अपव्यय कर अपने भावी जीवनको दुःखमय बना लेते हैं—इन्हीं सब बातोंका अब हम अगले अध्यायमें वर्णन करेंगे।

हस्त-मैथुन ।

किशोरावस्थामें पदार्पण करते ही पुरुषोंके हृदयमें नयी नयी तरङ्ग उठने लगती हैं और किसी विलक्षण आकर्षण शक्ति द्वारा उनके हृदय स्त्रियोंकी ओर आकर्षित होने लगते हैं। उस समय वे सांसारिक सुख भोग करनेके लिये इस तरह व्याकुल हो उठते हैं; कि उन्हें किसी तरह कल नहीं पड़ती। उनका हृदय अशान्त और चित्त चञ्चल बना रहता है। उस समय जिन बच्चों पर माता पिताका कठिन नियन्त्रण रहता है, अथवा जो समझदार होते हैं, वह आत्म-संयम कर वीर्य-रक्षा करते हैं, परन्तु यह बात बहुत कम दिखाई देती है। बहुधा हमारे देशके नवयुवक उस समय अविवाहित होनेके कारण, अस्वाभाविक उपायोंका अवलम्बन कर अपने व्याकुल हृदयको शान्त करते हैं। अस्वाभाविक उपायोमें पुं मैथुन और हस्त मैथुन इन्हीं दोनोंका अधिक प्रचार है।

पुं मैथुनका व्यसन बड़ी अवस्थाके मनुष्योंमें भी पाया जाता है। सरकारकी ओरसे इसके लिये दण्ड देनेका विधान अवश्य है, परन्तु उसमें इस निन्द्य व्यापारको निर्मूल करनेका सामर्थ्य नहीं। भारतके कुछ शहरोंमें इसका बहुत प्रचार है। वहाँ पढ़े लिखे और भले घरके समझदार मनुष्य भी इस दुर्व्यसनमें लिप्त पाये जाते हैं। ऐसे मनुष्योंको समझाना बुझाना और उपदेश देना व्यर्थ है। समझाना उसीको चाहिये, जो समझता न हो। जो जान बूझ कर गढ़ेमें गिरता हो, उसे मूर्ख समझ कर "भाग्य भरोसे" छोड़ देना ही उचित है।

किशोरावस्थाके लड़कोंमें जितना हस्तमैथुनका प्रचार है उतना पुं मैथुनका प्रचार नहीं देखा जाता। इसका प्रधान कारण यह है, कि इस कार्यके लिये जितना साहस और दृढ़ता चाहिये, उतने साहस और दृढ़ताका उस अवस्थाके बच्चोंमें अभाव होता है। जो लड़के बड़े साहसी और उपद्रवी होते हैं, वे ही इस दिशामें अग्रसर होते हैं। शेष सब हस्त मैथुन द्वारा अपनी कामाग्निको शान्त करनेकी चेष्टा करते हैं। इसीको हमने किशोरावस्थाके अत्याचारके नामसे सम्बोधित किया है।

पन्द्रह या सोलह वर्षकी अवस्थामें, जिस समय शरीरमें

वीर्य उत्पन्न होता है, उस समय स्त्री और पुरुषोंकी जननेन्द्रियाँ विकसित होने लगती हैं। उस समय दोनोंके शरीर और मनमें युगान्तर उपस्थित हो जाता है। काम वासना इतनी तीव्र हो उठती है, कि लोगोंका हृदय एकवार ही अशान्त हो जाता है। विषय भोगके विचार मात्रसे गुह्येन्द्रिय उत्तेजित हो जाती है और स्पर्शसे एक प्रकारका अनिर्वचनीय सुख अनुभव होने लगता है। ज्यों ज्यों आनन्द आता जाता है, त्यों त्यों लोग उसे अधिकाधिक हिलाने डुलाने लगते हैं। यहाँ तक, कि इस परिचालनके कारण अंतमें वीर्य-पात हो जाता है। वीर्यपात हो जाने पर कामाग्नि शान्त हो जाती है। लोग समझते हैं, कि हमने प्रकृत आनन्द प्राप्त किया, किन्तु वास्तवमें यहींसे उनकी अधोगतिका आरम्भ होता है! शनैः शनैः इसी प्रक्रियाके कारण उनका भावी जीवन दुःखमय हो जाता है।

नीच प्रकृतिके नौकर चाकर और बदमाश लड़के अनेक प्रकारसे अबोध बालकोंको इस विषयकी शिक्षा देते हैं। उस समय विचार शक्तिकी न्यूनता और जोशकी अधिकता रहती है, अतः लड़कोंको बहुत जल्दी यह आदत लग जाती है। वे समझते हैं, कि हस्त द्वारा इन्द्रिय-परिचालन करनेसे स्त्री संयोगके समान आनन्दकी प्राप्ति होती है। उन्हें

इस बातका विचार तक नहीं आता, कि इस कार्य द्वारा हम अपना सर्वनाश कर रहे हैं और स्वेच्छापूर्वक मृत्यु-मुखमें पतित होने जा रहे हैं। उन्हें इस बातका स्वप्नमें भी ध्यान नहीं रहता, कि इस बुरी आदतके कारण हमारा दाम्पत्य-जीवन कितना नीरस और कितना दुःखमय हो जायगा। उन्हें यह सब बातें उसी समय सूझ पड़ती हैं, जब वे अपनी सारी शक्तियाँ खो बैठते हैं, शरीर अनेक रोगोंका घर बन जाता है और काल उन्हें कवलित करनेके लिये त्वरित गतिसे अग्रसर होने लगता है।

नवयुवकोंको इस उपायका अवलम्बन करनेमें बड़ी ही सुविधा रहती है। उन्हें इसके लिये किसीका सहारा नहीं खोजना पड़ता। आवश्यकता केवल एकान्तकी पड़ती है और वह उन्हें आसानीसे मिल भी जाता है। किसीसे कुछ कहना सुनना नहीं पड़ता। एकान्त रहनेके कारण किसीके देखने सुनने या किसी तरहकी निन्दा होनेका भय भी नहीं रहता। इन्हीं सब सुविधाओंके कारण अबोध बालक—भावी प्रजाके भाग्य विधाता—इस दुर्व्यसनमें लिप्त हो जाते हैं।

पहले पहल जब कोई युवक इस व्याधिका शिकार होता है, तब उसे बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता है। इन्द्रियोंकी

चञ्चलताके कारण उसका जो चित्त व्याकुल हो उठता था, वह कुछ देरके लिये शान्त हो जाता है। जिस काम वासनाको चरितार्थ करनेके लिये वह लालायित रहता था, जिस सुखको प्राप्त करनेके लिये वह सदैव व्यग्र बना रहता था, वह उसे अनायास ही प्राप्त होने लगता है। उसे न मालूम था, कि अपने ही शरीर द्वारा इतनी आसानीके साथ ऐसा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। अब वह बारम्बार वैसा ही सुख प्राप्त करनेके लिये उत्सुक हो उठता है और जब जब एकान्त तथा अवसर मिलता है, वह उसे अवश्य प्राप्त करता है। जब तक वह अपने हृदयका यह हौसला पूरा नहीं करता, तब तक उसके हृदय पर एक बोझ सा लदा रहता है, जब क्रिया-निवृत्ति हो जाती है, तब उसका हृदय शान्त हो जाता है। ज्यों ज्यों वह इन्द्रिय-परिचालन करता है, त्यों त्यों वह समझता है, कि इससे बढ़कर सुलभ आनन्द संसारमें और है ही नहीं। इस उपायको खोज निकालनेके कारण वह मन ही मन अपनेको धन्यवाद भी देता है। इन्द्रिय-परिचालनके बाद वीर्यपात होनेपर उसकी इन्द्रियोंका वेग घट जाता है, शरीर शिथिल हो जाता है और आँखें झप जाती हैं। चुपचाप पड़ रहनेकी इच्छा होती है। थकावट दूर हो जाने पर पुनः

वही विचार उत्पन्न होते हैं और मन इधर उधर भटकने लगता है। रात दिन दिमागमें यही बातें घूमा करती हैं ; फलतः एकान्त मिलने पर पुनः इन्द्रियाँ चञ्चल हो उठती हैं और वह पुनः उन्हें उसी उपायसे शान्त करता है।

और रोगोंकी तरह इस अत्याचारका फल हाथोहाथ नहीं मिलता, इसलिये अभागे युवक समझते हैं, कि हम वास्तविक सुख भोग रहे हैं। उनका यह निन्द्य व्यापार एकान्तमें होता है, अतः कोई हाथ पकड़नेवाला भी नहीं मिलता। किसीको कुछ मालूम नहीं होता, अतः कोई यह भी नहीं कहता, कि यह क्या कर रहे हो। कुछ दिनों तक यह कम बराबर चला जाता है और किसीको कुछ हाल मालूम नहीं होता। जब तक शरीरमें शक्ति रहती है. तबतक जोश आता है और उसे वह इस अस्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा शान्त करता है। उस समय उसके दुष्परि-णामकी ओर उसका ध्यान भी नहीं आकर्षित होता। न समूचे शरीरमें एक साथ निर्बलता ही मालूम होती है, न कोई परिवर्त्तन ही, अतः वह बिलकुल निश्चिन्त रहता है, परन्तु कुछ ही दिनोंके बाद इसका भयंकर दुष्परिणाम भीषण रूपमें उसे दृष्टिगोचर होने लगता है।

इस दुर्व्यसनका प्रभाव सर्व प्रथम मानसिक शक्ति पर

पड़ता है। रोगीकी स्मरण शक्ति क्षीण होने लगती हैं और नेत्रोंकी ज्योति मन्द पड़ जाती है। शरीर और मन दोनोंमें बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः शारीरिक निर्बलता बढ़ने पर मानसिक निर्बलता बढ़ना स्वाभाविक है। स्मरण शक्तिके साथ ही साथ विचार शक्तिका भी लोप हो जाता है और इसी प्रकार शनैः शनैः सर्वनाश हो जाने पर लोगोंको ज्ञान होता हैं, कि हमने कैसी भयंकर भूल की है। उस समय वे हाथ मलमल कर पछताने लगते हैं, परन्तु इससे कोई लाभ नहीं होता।

हस्तदोष किंवा हस्त मैथुनमें सबसे अधिक बुरी बात यह है, कि जिसे एकबार यह दुर्व्यसन लग जाता है, वह सर्वनाश हो जानेके पहले शायद ही इससे मुक्त होता है। वीर्यके इस अपव्ययसे शक्तिका ह्रास होता है, अतः शरीरकी वृद्धि रुक जाती है और इन्द्रियोंका यथेष्ट विकास नही हो पाता। यह बात भी ध्यान रखने योग्य है, कि प्रकृत स्त्री-संयोगसे जो नैसर्गिक आनन्द प्राप्त होता है, उस आनन्दका शतांश भी इस अस्वाभाविक गमनसे नहीं प्राप्त होता। साथ ही वैज्ञानिकोंका कथन है, कि प्रकृत संयोगसे जो शारीरिक शक्ति क्षीण होती है, वह पारस्परिक संघर्षणसे बहुत कुछ पुनः प्राप्त हो जाती है, परन्तु इस प्रक्रियामें

वैसा नहीं होता। जबतक जोश रहता है, तबतक लोग यह कार्य करते हैं। जोश ठंढा हो जानेके बाद उन्हें थकावट, चिन्ता और पश्चाताप धर दबोचता है। इससे उन्हें दुगुनी हानि होती है। वैज्ञानिकोंका यह भी कथन है, कि प्रकृत संयोगकी अपेक्षा इसमें बीस गुनी अधिक शक्ति क्षय होती है। अर्थात् बीस बार स्त्री संयोग करने पर शरीरको जितनी हानि उठानी पड़ती है, उतनी हानि हस्त मैथुनमें एक ही बारमें उठानी पड़ती है। इसीसे इस व्याधिके शिकार देखते ही देखते वृद्ध हो जाते हैं और जवानी चार दिनकी चाँदनीकी तरह उनका साथ दे, अपना रास्ता लेती है।

जो लोग अपनी अज्ञानताके कारण इस दुर्व्यसनके फेरमें पड़ जाते हैं, वे फिर सहजमें इसके बन्धनसे मुक्ति नहीं पाते। फल यह होता है, कि कुछ दिनोंके बाद जब यौवनमें दाम्पत्य-जीवनका प्रकृत सुख उपभोग करनेका समय आता है, तब उन्हें प्रकृत आनन्दका अनुभव नहीं मिलता। वे अपना शारीरिक सामर्थ्य खो बैठते हैं, अतः इच्छा करने पर भी कोई काम नहीं कर पाते। उनमें पत्नीव्रत पालन करनेका सामर्थ्य नहीं रहता, अतः उन्हें स्त्रीको मुँह दिखाते शर्म मालूम होती है। इस शोचनीय अवस्थामें उन्हें आत्मघात

कर जीवनका अन्त लानेकी इच्छा होती हैं, परन्तु आत्मघात करना भी कोई आसान बात नहीं है। उसके लिये भी कुछ आत्मबल और साहस चाहिये। इन दोनोंका उनके हृदयमें पहलेसे ही अभाव रहता है, अतः वे प्राण-विसर्ज्जन भी नहीं कर सकते। उन्हें आजीवन वृद्धावस्थाके असह्य कष्ट भोगने पड़ते हैं और अन्तमें पश्चाताप करते हुए बड़े दुःखके साथ अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करनी पड़ती है।

हम पहले ही कह चुके, कि भुक्त अन्नसे प्रायः एक मासमें वीर्य बनता है। वीर्यका एक विन्दु खूनके चालीस विन्दुओंके बराबर होता है। जैसे मन्थन करने पर दूधसे मक्खन निकलता है, वैसे ही रक्तके मन्थनसे वीर्य प्रस्तुत होता है। इसीलिये वीर्य शरीरका सत्व माना गया है। अपव्यय करनेसे ज्यों ज्यों वह घटता है, त्यों त्यों मनुष्य निःसत्व, निस्तेज और शक्ति हीन होता जाता है।

जो लोग किशोरावस्थामें यह अत्याचार करते हैं, उन्हें युवावस्थाके प्रकृत सुखोंसे वञ्चित रहना पड़ता है। कभी कभी यह आदत ऐसी जड़ जमा लेती है, कि इसके दुष्प-रिणामोंका ज्ञान हो जाने पर भी मनुष्य अपने मन पर अंकुश नहीं रख सकता और उसे अनिच्छापूर्वक भी यह

प्रक्रिया करनी पड़ती है। इस व्यसनके दुष्परिणामका ज्ञान होने पर लोग मुक्तिलाभ करनेके विचारसे स्त्री संयोगमें प्रवृत्त होते हैं, परन्तु पुरुषत्वका लोप हो जानेके कारण उन्हें उलटा लज्जित होना पड़ता है! संसारमें इससे बढ़कर हीन और दयाजनक अवस्था दूसरी और कौन हो सकती है। हमारे देशके अधिकांश युवकोंका यही हाल होता है और इसीलिये उनका दाम्पत्य-जीवन आनन्दसे नहीं व्यतीत होता। इस अत्याचारके कारण मनुष्य किस तरह रोगी हो जाता है, शनैः शनैः कौन कौन लक्षण प्रकट होते हैं—इन्हीं सब .बातोंका अब हम विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। माता पिताओंको चाहिये, कि अपने बच्चोंमें इन लक्षणोंको देखते ही सावधान हो जायें और उनकी प्रवृत्तियों पर कठिन नियन्त्रण रख, उनके भावी जीवनको इस प्रकार नष्ट होनेसे बचायें।

हस्त दोषके रोगीका शरीर क्षीण हो जाता है। हाथ, पैर और पीठमें पीड़ा होती है। मन सदा उदास और खिन्न रहता है। स्वभाव चिड़चिड़ा और संशय-शील हो जाता है। बात बातमें दूसरोंसे झगड़नेकी आदत पड़ जाती है। मूत्र किंवा मल विसर्जनके समय वीर्य मिश्रित एक प्रकारका सफेद पदार्थ निर्गत होने लगता है। पेटमें

बहुधा कब्जियत बनी रहती है। स्मरण शक्ति कम हो जाती है। शरीरमें स्फूर्त्तिके बदले सुस्ती आ जाती है। जरासा परिश्रम करते ही सांस फूलने लगती है। अश्लील पुस्तकें पढ़नेकी इच्छा होती है। एकान्त पसन्द पड़ता है। आदत न छूटने पर रोगी मृत्युकी कामना करता है।

खून और नाड़ीकी गति मन्द हो जाती है। हृदयकी कोई बीमारी हो जाती है। दिमागकी नसें कमजोर पड़ जानेके कारण कोई मस्तिष्क रोग हो जाता है। क्षय और जीर्ण-ज्वरकी बीमारियाँ बहुधा इसीके कारण हुआ करती हैं। कभी कभी भगन्दर आदि भयंकर बीमारियाँ भी हो जाती हैं। कभी कभी मूर्च्छा आनेके बाद मृत्युतक हो जाती है। किसी किसीका बेतरह सिर दुखा करता है और उसके कारण किसी काममें जी नहीं लगता।

जननेन्द्रिय बारंबार उत्तेजित होनेके कारण नसें कमजोर पड़ जाती हैं। उसका अग्रभाग शीतल बना रहता है। पुरुषत्वका लोप हो जानेके कारण मनुष्य किसी कामका नहीं रहता। स्त्री संयोगके समय जननेन्द्रिय उत्तेजित होनेके बाद कुछ ही देरमें शिथिल हो जाती है। उत्तेजित अवस्थामें भी कृशता बनी रहती है। कुछ दिनों तक यह स्थिति रहनेके बाद मनुष्य सदाके लिये नपुंसक हो जाता

है। शक्ति न होने पर भी किसी किसीको विषय करनेकी इच्छा होती है और किसी किसीकी इच्छा शक्ति ही नष्ट हो जाती है। दोनों वृषण नीचेको लटक पड़ते हैं। बायाँ वृषण अपेक्षा कृत अधिक बड़ा हो जाता है। वृषण और उनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ियोंमें वेदना होने लगती है। पेशाब बारम्बार करना पड़ता है। पेशाबकी धार टेढी निकलती है और उसका रंग बहुधा पीलाई लिये रहता है। कभी कभी वृषण बिलकुल छोटे हो जाते हैं। पेशाब करनेके बाद गुदाके निकट मूत्रनालीमें तीक्ष्ण पीड़ा होती है। किसी किसीकी उत्पादक इन्द्रिय इतनी निर्बल हो जाती है, कि जरासी उत्तेजना होते ही या दस्तके समय जोर करते ही वीर्य निकल पड़ता है।

रोगीको अच्छी तरहसे निद्रा नहीं आती। मतवालेकी तरह पड़े रहनेकी इच्छा होती है। सोकर या बैठकर उठने पर आँखोंके सामने अँधेरा छा जाता है। शरीरमें ऐंठन और पीड़ा होती है। किसी किसीको हलका बुखार आने लगता है और शामको शरीर अधिक गरम हो जाता है। गला बैठ जाता है और शब्द खोखरा हो जाता है। हाथ पैर ठंढे बने रहते हैं। कमजोरीके कारण पैर लड़खड़ाने लगते हैं और बालोंमें रूखापन आ जाता है।

भोजनकी रुचि घट जाती है। अन्न ठीक ठीक न पचनेके कारण शरीर दुर्बल हो जाता है। कुछ लोग भोजन भली भाँति कर सकते है, परन्तु वह उनके शरीरमें नहीं लगता। पाचन शक्ति खराव हो जानेके कारण कमजोरी बढ़ती जाती है। दस्त ठीक समय पर नियमित रूपसे नहीं होता और उसके रंग रूपमें अन्तर पड़ा करता है। अन्तमें खाँसी और खाँसीसे क्षयकी बीमारी हो जाती है। दस्त पतले आने लगते हैं और रोगीका बचना असम्भव हो जाता है।

यह रोग अपनी चरम सीमामें पहुँच जाने पर फिर छिप नहीं सकता। रोगीका चेहरा देखते ही सारा हाल मालूम हो जाता है। जवानीमें जो तन्दुरुस्ती और लाली होनी चाहिये, वह न जाने कहाँ चली जाती है। चेहरा पतला और पीला पड़ जाता है। आँखोंकी रोशनी घट जाती है। होठोंकी अरुणता उड़ जाती है। दाँतोंकी सफेदी कम हो जाती है। बाल झर जाते हैं और जवानीमें ही बुढ़ापेकी सी हालत हो जाती है। रोगीका स्वभाव इतना संकोचशील हो जाता है, कि उसके चेहरे पर हमेशा शर्मकी छाई रहती है। आँखें उठा कर बात करना उसे कठिन हो जाता है। आँखोंके नीचे श्यामता आ जाती है।

मन और मस्तिष्ककी दशा बिलकुल बदल जाती है और "शरीरं व्याधि मन्दिरम्" हो जाता है।

उपरोक्त लक्षणों द्वारा हस्तदोषका रोगी आसानीसे पहचाना जा सकता है। यद्यपि अति मात्रामें स्त्री प्रसंग करनेसे भी यह लक्षण प्रकट होते हैं, परन्तु स्त्री संगकी अपेक्षा हस्त मैथुनके दोषमें उनका प्राबल्य विशेष होता है। बात यह है, कि स्त्री प्रसंग शरीरमें जितनी शक्ति, जितना सामर्थ्य और जितना जोश होता है, उतने ही परिमाणमें किया जा सकता है, परन्तु हस्त मैथुनमें शक्ति या सामर्थ्य-की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। सामर्थ्य चाहे जितना कम हो, शक्ति चाहे जितनी क्षीण हो, तब भी यह काम हो सकता है। इन्द्रिय परिचालन करने पर वीर्य जुटानेका काम वृषणों पर पड़ता है। वे भी इस घृणित कर्मके कारण दुर्बल हो जाते हैं अतः पतला, और परिपक न मिला तो अपरिपक्व ही वीर्य जुटा देते हैं और जननेन्द्रिय भली भाँति उत्तेजित होनेके पूर्व ही उसे निकाल बाहर करती है। इसीलिये जब स्त्री संग करनेकी चेष्टा की जाती है, तब सफलता नहीं मिलती और किसी तरह मिलती है तो स्वस्थ मनुष्यकी तरह नैसर्गिक आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती।

जो लोग यह समझते हों, कि स्त्री संग और हस्त-

मैथुन दोनोंमें समान रूपसे वीर्य नष्ट होता है, अतः दोनोंमें कोई अन्तर नहीं—वे भयंकर भूल करते हैं। उन्हें यह बात भली भाँति समझ रखना चाहिये, कि स्त्री-संग और हस्त मैथुनमें जमीन आसमानका अन्तर है। स्त्री-संगकी अपेक्षा हस्त मैथुन द्वारा शारीरिक हानि विशेष परिमाणमें क्यों होती है, यह समझनेके लिये पाठकोंको निम्नलिखित बातोंपर ध्यान देना चाहिये।

(१) स्त्री संयोग पराधीन होनेके कारण मात्र अवसर मिलने ही पर हो सकता है, परन्तु हस्तक्रियाका कार्य स्वेच्छा पर निर्भर होनेके कारण जब चाहे तब और जितनी बार चाहे उतनी बार हो सकता है। अतः वीर्य अधिक परिमाणमें नष्ट होता है।

(२) स्त्री संयोगके समय दृढ़ और उत्तेजित अंगकी आवश्यकता पड़ती है, अतः यह कार्य शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार ही किया जा सकता है, परन्तु हस्त मैथुन इन्द्रिय शिथिल होने पर भी किया जा सकता है, अतः लोग अपेक्षा कृत अधिक वीर्य नष्ट करते हैं।

(३) स्त्री संयोगके समय स्पर्श, शब्द, दर्शन आदि अनेक कार्योंमें इन्द्रियाँ संलग्न रहती हैं, अतः किसी एक अङ्ग पर सीमातीत परिश्रम-भार नहीं पड़ता, परन्तु हस्त

मैथुनमें केवल एक ही प्रक्रिया होती है, अतः मस्तिष्क और शरीरको अपेक्षा कृत अधिक हानि उठानी पड़ती है।

(४) स्त्री संयोगके समय ज्ञानतन्तु नैसर्गिक उत्तेजना-से आपोआप उत्तेजित होते हैं और मैथुन क्रियाका वेग शनैः शनैः वृद्धिगत होता है, परन्तु हस्त मैथुनमें स्वाभा-विक उत्तेजनाका अभाव होता है अतः उसे उत्पन्न करनेके लिये मनको बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त यह कार्य्य बड़े वेगसे सम्पन्न होता है अतः शरीरको इतना धक्का पहुँचता है, कि क्रिया-समाप्ति होने पर वह एकदम शिथिल और सत्वहीन सा हो जाता है।

(५) स्त्री और पुरुषके प्रकृत समागममें इन्द्रियोंके पारस्परिक घर्षणसे एक प्रकारकी विजली पैदा होती है। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि उस विजलीके कारण न केवल आनन्दकी ही प्राप्ति होती है, वल्कि स्त्री और पुरुषोंकी खोई हुई शक्तिका अधिकांश भी उससे पूरा हो जाता है। हस्त मैथुनमें इस विद्युतका प्रादुर्भाव नहीं होता, अतः शारीरिक हानि तो होती है, साथ ही उसकी पूर्त्ति भी नहीं होती।

अब हमारे पाठक सोच सकते हैं, कि विवाह होनेके पूर्व ही जिसने इस प्रकार अत्याचार कर अपनी जीवनी-शक्ति खो दी हो, वह दाम्पत्य-जीवनका स्वर्गीय सुख कैसे

भोग सकता है? जिसने इस प्रकार अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर आत्म हनन कर लिया हो, वह सुखकी आशा कैसे रख सकता है? इसीलिये हम कहते हैं, कि दाम्पत्य-जीवन सुखमय बनानेके लिये पहलेसे ही तैयारी करनी चाहिये। जो बिना विचार किये ही इस कुकर्ममें प्रवृत्त होते हैं, वह आप ही आप अपना भावी जीवन दुःखमय बना लेते हैं।

इस दुर्व्यसनमें लिप्त होनेवाले अबोध बालकोंमेंसे बहुत थोड़ोंको आरम्भमें इस बातका ज्ञान होता है, कि हम यह कार्य अनुचित कर रहे हैं, परन्तु कुछ ही दिनोंके बाद जब उनकी शक्ति क्षीण होने लगती है, तब उनको इस बातका ज्ञान अवश्य हो जाता है, कि हम भयंकर भूल कर रहे हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश यह बुरी आदत उस समय उन्हें इस तरह अपने चंगुलमें फँसाये रहती है, कि वे इच्छा करने पर भी उसे नहीं छोड़ सकते। माता पिता इस ओर ध्यान ही नहीं देते। वे तो लड़केकी उम्र—दिन और मास ही गिननेमें व्यस्त रहते हैं। समझते हैं, कि हमारा लड़का बड़ा हो रहा है, रेख फूट रही है, वह जवान हो रहा है, ब्याहने लायक हुआ, परन्तु वस्तुस्थिति कुछ और ही होती है। लड़का नित्य ही वृद्धावस्था और मृत्युकी ओर अग्रसर

होता जाता है और कुछ दिनके बाद अपनी व्याह करनेकी योग्यता भी खो बैठता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अधिकांश लड़के इस बुरी आदतमें फँसे रहते हैं। माता पिताओंको चाहिये, कि उनकी स्थिति, उनकी चालचलन और उनके स्वास्थ्य पर भली भाँति नजर रक्खें। यदि उनके गालोंकी सुरखी उड़ जाय, चेहरा पीला पड़ जाय और उपरोक्त लक्षण दृष्टिगोचर हों तो समझ लें, कि वह अवश्य अपना सर्वनाश कर रहा है। उन्हें चाहिये, कि वे स्वयं उन्हें एकान्तमें उपदेश दें और उन्हें समझा दें, कि यह अपने ही हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना है। यदि उन्हें यह काम करते संकोच मालूम हो, तो अपने किसी मित्रसे करावें और यदि यह भी न कर सकें, तो उन्हें निःसंकोच भावसे इस विषयकी पुस्तकें पढ़नेको दें। हम इस बातका विश्वास दिलाते हैं, कि उन्हें इससे सिवा लाभके किसी प्रकारकी हानि न होगी।

वीर्य-स्राव
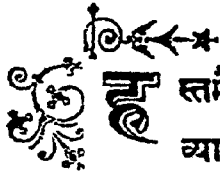
हस्तमैथुनके अतिरिक्त वीर्यस्राव भी एक ऐसी व्याधि है, जो दाम्पत्य जीवनमें पदार्पण करनेके पहलेही मनुष्यका जीवन दुःखमय बना देती है। यद्यपि यह रोग विवाह हो जानेके बाद भी होता है और बहुत लोग आजीवन इसके पंजेसे मुक्त नहीं होते, तथापि जो लोग हस्त-मैथुनमें प्रवृत्त होते है, और जो लोग अपने मनको व्यर्थ इधर उधर दौड़ाया करते हैं, वे बहुत जल्दी इस रोगसे ग्रसित हो जाते हैं और उनका दाम्पत्य-जीवन नीरस एवम् दुःखमय हो जाता है।

चिकित्सा-शास्त्रका कथन है, कि शारीरिक शक्ति और स्वास्थ्यके परिमाणमें बाल्यावस्थासे युवावस्था तक शनैः शनैः वीर्य उत्पन्न होता है और शरीरमें संचित हुआ करता

है। मनुष्य जबतक किसी प्रकारके दुराचारमें प्रवृत्त नहीं होता, तबतक उसका वीर्य निर्दोष रहता है, अतः शारीरिक स्वास्थ्यमें भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं पड़ती, परन्तु किसी शारीरिक या मानसिक अत्याचारके कारण जब वीर्य दूषित हो जाता है और उसे धारण करनेवाली नसें निर्बल हो जाती है, तब वीर्यस्रावकी व्याधि मनुष्यपर आक्रमण करती है और उसके जीवनको दुःखमय बना देती है। जो लोग पूर्णरूपसे ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हैं और वीर्य परिपक्व होनेके पहले किसी प्रकारका अत्याचार नहीं करते, वे इस रोगसे सदैव बचे रहते हैं।

वास्तवमें वीर्यस्राव बड़ा घृणित रोग है। बिना किसी आवश्यकताके अनियमित रूपसे वीर्यस्राव होते देख लोगोंको चिन्ता होने लगती है और वह होना स्वाभाविक ही है, परन्तु संसारमें बहुत थोड़े मनुष्य ऐसे होंगे जो इस व्याधि-से मुक्त हों। कोई किसी कारणसे इसका शिकार होता है तो कोई किसी कारणसे। नवयुवकगण इसकी शिकायत विशेष रूपसे करते हैं। उनके लिये अब यह रोग साधारणसा होगया है। कुपथगामी और मनचले युवक, जो प्रकृतिके नियमोंको अतिक्रमण करनेमें यत्किञ्चित भी संकोच नही करते, वे आसानीसे इस रोगके शिकार होते हैं। उनके

शारीरिक या मानसिक अत्याचारके कारण वीर्यवाहिनी नसें कमजोर हो जाती हैं। कुछदिन यही हाल रहने पर वीर्य पतला पड़ जाता है और उसके प्रकृत गुण नष्ट हो जाते हैं। एकबार बुरी आदत लग जानेपर बादको छोड़ देने पर भी स्नायु इतने निर्बल हो जाते हैं, कि वे भलेचंगे वीर्यको भी धारण नहीं कर सकते। वीर्योत्पादक अंग और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली समस्त इन्द्रियां एकाएक उत्तेजित हो उठती हैं और वीर्यको बाहर निकाल देती हैं।

यह रोग बहुधा हस्तदोषके कारण होता है। बाल्यावस्थामें स्त्रीगमन करना, व्यभिचार करना, विषयासक्त रहना, चित्तको चंचल बनानेवाली बातोंको हृदयमें स्थान देना, बुरे विचार करना और कामेच्छाको उत्तेजित करनेवाली पुस्तकोंका पढ़ना—यह सभी बातें इस रोगको जन्म देती हैं। कभी-कभी किसी दूसरे रोगके कारण भी यह रोग हो जाया करता है। पेटमें कब्जियत रहने अथवा मल सूख जानेसे भी वीर्यवाहिनी नसोंपर जोर पड़ता है अतः वे उत्तेजित हो उठती हैं। इसके अतिरिक्त वृषण सम्बन्धी व्याधिके कारण भी यह रोग हो जाता है। चिकित्सा-शास्त्रमें ऐसे ऐसे अनेक कारणोंका वर्णन है, परन्तु इस व्याधिका प्रधान कारण चित्तकी चञ्चलता ही है। जो लोग रातदिन विषय सम्बन्धी

स्त्री दिखाई देती है और उसी काल्पनिक स्त्रीके साथ संग करने पर वीर्यपात होता है। इसीको लोग स्वप्नदोष कहते हैं। स्वप्नदोष होनेपर शरीरमें थकावट, निर्बलता और शिथिलता मालूम होती है। रोगीका चित्त सदैव चञ्चल बना रहता है। शरीर शीतल रहता है। पढ़ने लिखने और काम करनेके समय आलस्य आता है। सोचने समझने और विचार करनेकी शक्ति कम हो जाती है। स्मरण शक्तिका लोप हो जाता है। लोगोंसे दूर रहनेकी इच्छा होती है। एकान्तवास रुचिकर प्रतीत होता है। चित्त भयभीत और लज्जित सा बना रहता है। अपनी शक्तिपर विश्वास नहीं रहता। माथा भारी रहता है और दुखा करता है। चक्कर भी आता है। पसली, पीठ और कमरमें दर्द होता है। वृषण नीचेको लटक पड़ते हैं और जननेन्द्रियका मुख शीतल बना रहता है। किसी किसीकी जननेन्द्रिय बारम्बार उत्तेजित हो कुछ ही देरमें शान्त हो जाया करती है। इस रोगके कारण कोई कोई उन्मत्त भी जाते हैं। मस्तिष्क पर इस व्याधिका विशेष रूपसे प्रभाव पड़ता है। आरम्भमें ही औषधोपचार करनेसे रोग निर्मूल हो जाता है, परन्तु उसकी उपेक्षा करने पर शनैः शनैः दूसरी अवस्थाका आरम्भ होता है।

दूसरी अवस्थामें मल और मूत्र विसर्जनके समय वीर्य-स्राव होने लगता है। पहले स्वप्न दोष बन्द हो जाता है अतः रोगी अपनेको धन्य समझने लगता है। वह विचारा यह नहीं समझ सकता, कि मेरे शरीरमें उससे अधिक प्रबल और भयंकर व्याधिने प्रवेश किया है। बहुधा वीर्य मूत्रके साथ मिला रहता है, अतः साधारण वैद्य भी इस रोगका निदान नहीं कर सकते। बारम्बार वीर्य स्राव होनेके कारण नसें इतनी कमजोर हो जाती हैं, कि उनकी वीर्य धारणकी शक्ति ही लोप हो जाती है। अतः जो वीर्य संचित होता है, वह बिना किसी उत्तेजनाके ही निर्गत हो जाता है। पहली अवस्थाका तो रोगीको ज्ञान भी रहता है, परन्तु दूसरी अवस्था इस तरह गुप्त रीतिसे आरम्भ होती है, कि रोगी जबतक नपुंसक नहीं हो जाता, तबतक उसे इस बातका विचार ही नहीं आता, कि मैं रोगी हूँ। अब न रात्रिमें स्वप्न आते हैं, न चित्त चंचल होता है न किसी प्रकारका सुख ही मिलता है। केवल दिनमें मल और मूत्र विसर्जनके समय वीर्यपात होता है। रोगी इस बातको समझ नहीं सकता, अतः दिन प्रतिदिन अपने शरीरको क्षीण होते देख उसे चिन्ता होने लगती है। यदि उस समय ध्यानसे देखे तो उसे मालूम हो सकता है, कि पेशाबका अन्तिम

अंश और खास कर अंतके तीन चार बुंद कुछ चिकने, गाढ़े और सफेद उतरते हैं। कुछ दिनोंके बाद वीर्य धारणकी समूची शक्ति लोप हो जाती है, अतः बारम्बार वीर्य स्राव होने लगता है।

दूसरी अवस्था अधिक समय तक रहने पर तीसरी अवस्थाका आरम्भ होता है। इस अवस्थामें जननेन्द्रिय निस्तेज हो जाती है। इसीको लोग नपुंसकता कहते हैं। इस अवस्थामें स्त्री-गमन करनेकी इच्छा और शक्तिका नाश हो जाता है। कभी कभी कुछ शक्ति रहते ही इच्छाका: नाश हो जाता है और कभी कभी शक्ति न होने पर भी कुछ समय तक इच्छा बनी रहती है। किसीकी पहले इच्छा और बादको शक्ति नष्ट होती है और किसीकी पहले शक्ति और उसके बाद इच्छाका नाश होता है। युवावस्थामें इससे अधिक दुःखकी बात और हो ही क्या सकती है?

युवावस्था मनुष्यके शरीरमें वसंत कालके समान है। उस समय उसकी सुन्दर मूर्त्ति देख सभीका चित्त प्रफुल्लित हो जाता हैं। स्त्रियां उस समय पुरुष पर मुग्ध हो जाती हैं और मनही मन अपना सर्वस्व उसे अर्पण करनेको प्रस्तुत रहती हैं। यदि उस समय पुरुष उपरोक्त प्रकारके अत्याचारों द्वारा अपना यौवन और स्वास्थ्य खो बैठता है, उसमें

सहवास करनेका सामर्थ्य नहीं रहता, तो उसकी स्त्रीका हृदय सदैव दुःखित वना रहता है। स्त्रीका ही क्यों, पुरुषको भी अपनी दशा देख, दुःख होता है और सन्तापके कारण जो जला करता है। वह मन ही मन अपने कृतकर्म-के लिये पश्चाताप करता है, परन्तु उससे कोई फल नहीं होता। उस समय वह कहता है, कि यदि मुझे किसीने इस विषयकी शिक्षा दी होती, किसीने इस भयंकर फलका दिग्दर्शन कराया होता, तो आज मेरी यह दशा न होती। जिस समय स्त्री उदास चित्तसे उसके पास आ वैठती है, उस समय उसे आत्मघात तक करनेकी इच्छा होती है। शयन गृहमें पदार्पण करते समय उसके पैर काँपने लगते हैं। उसे मालूम होता है, मानों वह दाम्पत्य-धर्मके पालन की योग्यता ही नहीं रखता। अब उसे औषधोपचार करनेकी बात सूझती है, वह अखबारोंके पन्ने उलटता है, दवावालोंके सूचीपत्र मंगा कर पढ़ता है और भड़कोले विज्ञापन देख, स्वास्थ्यके ठेकेदारोंसे दो चार रुपयेकी दवा मंगा कर पुरुषत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करता है। परन्तु इससे कोई फल नहीं होता। किसी अच्छे वैद्य किंवा डाक्टर द्वारा अधिक समय तक चिकित्सा कराने पर चाहे कुछ लाभ भले ही हो जाय, वाकी अधिकांश लोगोंको निराश

ही होना पड़ता है। ऐसे मनुष्योंको दाम्पत्य-जीवनका किंचित भी आनन्द नहीं मिलता। वे अपने पापके लिये पश्चाताप करते ही करते मृत्युकी शान्तिमयी गोदमें चिर-कालके लिये विश्रांति ग्रहण करते हैं।

हमारे धर्म और चिकित्सा शास्त्रोंमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है, कि केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही स्त्री संग करना चाहिये। ब्रह्मचारीके लिये तो वीर्यपात पातक माना ही गया है, साथ ही गृहस्थके लिये भी दोषावह कहा गया है। शास्त्रकारोंका कथन है, कि जो पुरुष विवाहित अवस्थामें अपनी स्त्रीके साथ केवल ऋतुकालमें ही समागम करता है वह भी ब्रह्मचारी है। किसी अवस्थामें भी वीर्य-पात होना उन्होंने निर्दोष नहीं कहा। चाहे जिस दशामें, चाहे जिस कारणसे वीर्यपात हो, उन्होंने उसे निन्द्य और हानिकर ही बतलाया है। यहाँतक कि उसके लिये प्रायश्चित्त आदि करनेका भी विधान है।

परन्तु आजकल हमारी शिक्षादीक्षा, चालचलन और स्वेच्छाचारिताके कारण यह रोग इतना साधारण हो गया है, कि अनेक डाक्टर और वैज्ञानिक इसे किसी हद तक रोग ही नहीं मानते। उनका कथन है, कि साधारण रूपसे वीर्य-स्राव होना शरीरके लिये हानिकर नहीं, बल्कि हितकर

हैं। जब वह निश्चित सीमाको उलंघन कर विषम रूप धारण करे तब उसे रोग समझना चाहिये। हम अपने पाठकोंके हितार्थ उनके अभिमत उद्धृत कर यह बतलायेंगे, कि उनकी धारणा कैसी भ्रम पूर्ण है।

डाक्टर स्टेनली हाल अपने Adolescence नामक ग्रन्थमें लिखते हैं, कि जिस प्रकार स्त्रियोंको ऋतुस्राव होता है उसी प्रकार किशोरावस्थामें पुरुषोंको वीर्यस्राव होना स्वाभाविक है। उनका कथन है, कि स्वप्नमें वीर्यस्राव होना यौवनके आगमनका सूचक है। उन्होंने तीन अविवाहित पुरुषोंके वीर्यस्रावका हिसाब नोट किया था। उनके विषयमें वे लिखते हैं, कि तीनोंमेंसे एककी भी अवस्था तीस वर्षसे कम नहीं है। तीनों हृष्टपुष्ट, स्वस्थ और विद्वान हैं। एक तो बड़ा ही चतुर, सदाचारी और साधु पुरुष है। आठ वर्षतक उनके वीर्यस्रावका हिसाब रखने पर मी० स्टेनली हालने देखा, कि औसतसे प्रत्येकको प्रति मास साढ़े तीन बार वीर्यस्राव होता है। जुलाई मासमें सबसे अधिक याने पाँच बार और सितम्बरमें सबसे कम दो बार वीर्यस्राव हुआ। अप्रैल और नवम्बरमें प्रमाण बढ़ता हुआ और दिसम्बरमें घटता हुआ दिखाई दिया। वीर्यस्रावकी अवधि प्रायः सब पुरुषोंमें एक समान ही पायी गयी।

स्टेनली हालका कथन है, कि जब वीर्यस्रावका प्रमाण बढ़ता है तब शक्ति, पुरुषत्व और स्फूर्ति भी बढ़ती है। वीर्यस्रावकी अवधि प्रायः सब महिनोंमें समान ही रहती है। साल भरमें अधिकसे अधिक ५० बार और कमसे कम ३७ बार वीर्यस्राव हुआ। स्वास्थ्यके अनुसार वसंत और ग्रीष्ममें अधिक वीर्यस्राव होता है। वीर्यस्रावकी अवधिके सम्बन्धमें वे लिखते हैं, कि प्रतिशत ५६ बार सात या इससे कुछ कम दिनोंके अन्तरसे, ४० बार चार दिनोंके अन्तरसे और ३५ बार आठसे लेकर सत्रह दिनोंके अन्तरसे वीर्यस्राव होता है। अधिकसे अधिक अन्तर ४२ दिनका पड़ा। उनका कथन है, कि मिताहार और परिश्रम करने तथा कम सोने पर वीर्यस्राव अधिक दिनोंके अन्तरसे होता है। बहुधा रात्रिके पिछले पहरमें ही वीर्यस्राव होता है। सावधान रहने पर अवधि बढ़ाई जा सकती है, परन्तु वह अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती। शरीर निर्बल होनेपर तथा बारम्बार वीर्यस्राव होने पर शरीर शिथिल हो जाता है, परन्तु स्वस्थ दशामें नियमित रूपसे वीर्यस्राव होने पर आराम मिलता है। युवावस्थामें वीर्य जन्तुओंकी उत्पत्ति अधिक परिमाणमें होती है, अतः अधिक परिमाणमें वीर्य-स्राव होना स्वाभाविक है।

अमेरिकन डाक्टर आर० आर० रसेल एम० डी० का कथन है, कि जो वारम्बार मैथुन करते हैं, उनके वीर्यमें चपल, निरोगी और प्रजोत्पादक जन्तु विशेष परिमाणमें दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु जो लोग दीर्घकाल पर्यन्त मनोनिग्रह करनेके बाद स्त्री-संग करते हैं, उनके वीर्यमें बहुत कम गति हीन और निस्तेज जीवाणु होते हैं। इसका कारण वे यह बतलाते हैं, कि अधिक दिनोंके बाद स्त्री संयोग करने वालोंके वीर्यको दीर्घकाल पर्यन्त वीर्याशयमें बन्द रहना पड़ता है अतः वीर्यके जीवाणु किंवा शुक्र कीट मर जाते हैं। इसी लिये रात्रिके समय वीर्यस्राव होता है। इससे वह निस्तेज वीर्य निर्गत होकर नये वीर्यके लिये स्थान खाली कर देता है। अर्थात् दीर्घकाल तक वीर्य संचित रहने पर वह खराब हो जाता है, अतः उसे निकाल देनेके लिये वीर्यस्राव होना स्वाभाविक एवम् आवश्यक है।

डाक्टर एक्टन एम० आर० सी० एस० का कथन है, कि जो लोग व्यायाम नहीं करते और जिनका समय ऐश आराम और आनन्दमें ही व्यतीत होता है, उनके लिये दस या पन्द्रह दिनसे वीर्यस्राव होना हितकर है। इससे उनके स्वास्थ्यकी रक्षा होती है। साथ ही वे यह भी कहते हैं, कि जो लोग मनोनिग्रह करते हैं, कुवासनाओंको अपने

हृदयमें स्थान नहीं देते एवम् मिताहारी रहते हैं, उन्हें वीर्य-स्राव नहीं होता, और वीर्यस्रावका न होना ही वाञ्छनीय है।

प्रोफेसर न्युमैनका कथन है, कि मनुष्यके लिये मिताहारी रहना परमावश्यक है। परन्तु कितना ही नियमित रहने पर भी किसी न किसी अंगकी शक्ति किंवा वासना प्रबल हो ही जाती है। मनुष्यमें कामवृत्ति सदैव वास करती है, परन्तु किसी समय वह अत्यन्त प्रबल हो उठती है। उस समय यदि उसे चरितार्थ न किया जाय, तो किसी न किसी प्रकार उसकी शांति अवश्य होगी। ऐसा न होनेसे स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। उनका कथन है, कि वीर्यस्राव सर्वथा अनैच्छिक है। यह देखा गया है, कि जिन तरुण पुरुषोंने कभी हस्त मैथुन नहीं किया, यहाँ तक कि उसके सम्बन्धमें कोई बात तक नहीं सुनी, उन्हें भी वीर्य-स्राव होता है—आरम्भमें किसी प्रकारका मानसिक विकार न होने पर भी वीर्य निर्गत हो जाता है। कभी कभी विवाहित पुरुष, जो अधिक समय तक सहवास नहीं करते और वृद्ध पुरुष, जो अकेले पड़ जाते हैं, उन्हें भी वीर्यस्राव होता है। वीर्यस्राव पुरुषार्थका लक्षण है। इसके कारण शरीर निर्बल हो जाता है, यह धारणा बिलकुल भ्रम मूलक है। शरीर निर्बल हो जाने पर भी कोई वास्तविक हानि नहीं होती।

व्यायाम और अत्यन्त परिश्रम करने पर वीर्यका क्षय हो जाता है अतः स्वप्नदोष नहीं होता, परन्तु इससे मानसिक शक्तिका ह्रास हो जाता है। यही कारण है, कि बड़े बड़े पहलवान बुद्धिके मोटे दिखाई देते हैं। उनका कथन है, कि बढ़ी हुई काम-वासनाको घटानेके लिये प्रकृति जो उपाय करती है, वही हितकर है। अन्य उपायोंका अवलम्बन करना अनावश्यक है। साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं, कि अनियमित रूपसे वीर्यस्राव होना शरीरके लिये हानिकर है।

डाक्टरोंके इन उपरोक्त कथनोंसे ज्ञात होता है, कि वे नियमित रूपसे वीर्यस्राव होना सर्वथा स्वाभाविक समझते हैं। इनकी बातोंको सुनकर हमारे देशके मनुष्य भी अब वीर्यस्रावको रोग न मानकर उसे इन्द्रियोंका एक स्वाभाविक कर्म मानने लगे हैं, परन्तु यह ठीक नहीं। अनियमित रूपसे और अधिक परिमाणमें होनेवाले वीर्यस्रावको तो प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वान और चिकित्सक रोग मानते हैं, परन्तु नियमित रूपसे होनेवाले वीर्यस्रावको भी हम स्वाभाविक नहीं कह सकते। यद्यपि यह बिलकुल ठीक है, कि अधिक मात्रामें वीर्यस्राव न होने पर, शरीरमें थकावट या शिथिलता नहीं मालूम होती, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये, कि वह शरीरके लिये हितकर है।

हमारे यहाँ तो स्पष्ट उल्लेख है, कि मरणं बिन्दु पातेन, जीवनं बिन्दु धारणात्। जिसने एकबार भी वीर्यपात किया है, वह उस मनुष्यके मुकाबलेमें कदापि नहीं ठहर सकता, जिसे कभी वीर्यस्राव न हुआ हो। इस बातकी पुष्टिमें हम पाश्चात्य विद्वानोंके ही कथन उद्धृत कर देना उचित समझते हैं।

अमेरिकन डाक्टर जे० एच० केलौग एम० डी० का कथन है, कि किशोर और नवतरुण पुरुषोंमें हस्तदोष और विवाहित पुरुषोंमें विषय-लम्पटता बढ़ जानेके कारण वीर्य क्षीणताकी व्याधिने भयंकर रूप धारण किया है। नियमित रूपसे किंवा अधिक दिनोंके बाद वीर्यस्रावका होना स्वाभाविक नहीं माना जा सकता। जिन लोगोंकी शारीरिक और मानसिक अवस्था अच्छी होती है और जो सदाचारी होते है, उन्हें स्वप्न किंवा जागरितावस्थामें अनिच्छापूर्वक वीर्यस्राव हो ही नहीं सकता।

डाक्टर हेनूरी अपने प्रेक्टिकल होम फिज़िशियन नामक ग्रंथमें लिखते हैं, कि भली भाँति इन्द्रियनिग्रह करने पर भी वीर्यस्राव होते देखा गया है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये, कि इसका होना स्वाभाविक है। वीर्यस्राव शारीरिक और मानसिक निर्बलताके ही कारण होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि पाश्चात्य विद्वान भी इस विषयमें एकमत नहीं हैं। डाक्टर स्टेनली हालका यह कथन, कि जैसे स्त्रियोंको ऋतुस्राव होता है, वैसे ही पुरुषोंको वीर्य स्राव होता है—हमें नितान्त भ्रम मूलक प्रतीत होता है। स्त्रियोंके आर्तव और पुरुषोंके वीर्यकी तुलना नहीं की जा सकती। स्त्रियोंका आर्तव शोणित मिश्रित एक प्रकारका द्रव होता है। उसमें जो शोणितका अंश दिखाई देता है, वह भी शरीरकी नाड़ियोंमें बहनेवाले रक्तके समान विशुद्ध नहीं होता। वह तो मलमूत्रकी भाँति सर्वथा मलीन और निरुपयोगी होता है। उसके निर्गत हो जानेपर स्त्रियोंके शरीरमें स्फूर्त्ति आती है और मन प्रफुल्लित रहता है। इतना ही नहीं, वल्कि उसके अवरोध और शोषण होने से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नष्ट होता है, परन्तु वीर्यमें उससे सर्वथा विपरीत गुण पाये जाते हैं। वीर्यमें कोट्यवधि सजीव कीट वास करते हैं। प्राण-पोषक और रासायनिक द्रव्योंसे उसकी सृष्टि होती है। जिस प्रकार आर्तव निकल जानेपर स्त्रियोंके स्वास्थ्यकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार वीर्य धारण करने पर बल और बुद्धि बढ़ती है। जिसके निर्गत होने पर शरीर शिथिल हो जाता है, इन्द्रियाँ श्रान्त हो जाती हैं, मन अशान्त

और मस्तिष्क जड़वत् हो जाता है, उस वीर्यके साथ आर्तवकी तुलना कैसे की जा सकती है? यदि ऋतुस्रावकी भाँति वीर्यस्राव भी स्वाभाविक होता, तो दोनोंके विषयमें एक समान बातें दिखाई देतीं। आर्तव निश्चित समयपर नियमितरूपसे निर्गत होता है, उसमें कमी बेशी होना रोगका कारण समझा जाता है, परन्तु वीर्यस्रावके सम्बन्धमें वैसा कोई नियम दृष्टिगोचर नहीं होता। किसीको रोज, किसीको दूसरे चौथे और किसीको दसवें पन्द्रहवें दिन वीर्यस्राव होता है। ऋतुस्राव अनियमित होनेपर लोग औषधोपचार करते है, परन्तु वीर्यस्राव अनियमित होनेपर कोई औषधो-पचार नहीं करता। आजतक किसी डाक्टरके पास ऐसा रोगी जाते नहीं देखा गया, जिसने उससे यह शिकायत की हो, कि मुझे अनियमितरूपसे वीर्यस्राव होता है, अतः कोई ऐसी दवा दीजिये, जिससे नियमितरूपसे हुआ करे। यदि वीर्यस्राव स्वास्थ्यके लिये हितकर है, तो जिन्हें वीर्यस्राव नहीं होता, उनके स्वास्थ्यमें कौन बाधा पड़ जाती है?

लोग अपने अनुभवसे भी इस बातको अच्छी तरहसे समझ सकते हैं, कि वीर्यस्राव होना शरीरके लिये कितना हानिकर है। वीर्यस्राव होनेपर दूसरे दिन शरीर कितना सुस्त, कितना शिथिल और कितना अशक्त मालूम होता है।

कभी-कभी तो कमर और शिरमें असह्य वेदना भी होने लगती है। ऐसी दशामें हम वीर्यस्रावको स्वास्थ्यकर कदापि नहीं कह सकते।

सन्तानोत्पादन ही वीर्यका प्रधान कार्य है। इसी-लिये उसकी सृष्टि हुई है। ईश्वरने उसे अकारण ही निर्गत होनेके लिये नहीं बनाया। मलमूत्र और श्लेष्म आदि मलीन और त्याज्य वस्तुयें भी अनिच्छापूर्वक त्यागी नहीं जा सकतीं। अनिच्छापूर्वक त्याग होता है, तो उसे हम रोग समझते हैं। ऐसी दशामें यह मान लेना, कि वीर्यस्रावका होना स्वाभाविक और स्वास्थ्यके लिये हितकर है—भयानक भ्रम होगा। बिना किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक चञ्चलताके वीर्यस्राव होना असम्भव है।

वीर्यरक्षाका ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्यपालन है। इस विषयमें दक्षसंहितामें लिखा है कि :—

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा मैथुनं पृथक्।
स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

अर्थात् स्मरण, कीर्त्तन, केलि, दर्शन, गुह्यभाषण, संकल्प, चेष्टा और क्रिया समाप्ति—यही मैथुनके आठ अङ्ग

हैं। इनसे विपरीत ब्रह्मचर्य है, जो सदा पालन करने योग्य है।

वीर्यस्राव क्यों होता है—यह बतलानेके लिये दक्ष-संहिताके यही दो श्लोक पर्याप्त हैं। केवल कामवासनाको चरितार्थ करनेपर ही वीर्यपात नहीं होता, बल्कि उपरोक्त आठ प्रकारोंमेंसे किसी प्रकारका मैथुन करनेपर भी वीर्यस्राव होता है और ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। स्मरण अर्थात् किसी स्त्री या प्रेमिकाका स्मरण करना। कीर्तन अर्थात् उसके रूप गुण और चालढालकी प्रशंसा, आलोचना किंवा चर्चा करना। केलि अर्थात् कामोत्पादक खेल तमाशे करना। दर्शन अर्थात् स्त्री अथवा प्रेमिकाका दर्शन करना। गुह्यभाषण अर्थात् उसके साथ एकान्तमें वार्तालाप करना। संकल्प अर्थात् मिलन आदि बातोंपर विचार करना—कैसे मिलेंगे क्या कहेंगे इत्यादि सोचना। चेष्टा अर्थात् मिलनके लिये यत्न करना और क्रिया समाप्ति अर्थात् सहवास करना।

कामके इन आठ अंगोंमें अंतिम अंग (सहवास) ही एक ऐसा अंग है, जिसमें प्रवृत्त होने पर स्वाभाविक रीतिसे वीर्यपात होता है। उसके अतिरिक्त शेष सभी अंग ऐसे हैं, जिनसे चित्त चञ्चल तथा चलायमान और इन्द्रियाँ

उत्तेजित हो उठती हैं। प्रेमिकाका स्मरण, गुणकीर्तन केलि, दर्शन, सम्भाषण, संकल्प, और चेष्टा—यह बातें ऐसी हैं, जो मनुष्यकी कामवासनाको जागरित कर देती हैं। कामवासना जागरित होनेपर मनमें एक प्रकारका आन्दोलन सा उठता है और उसीके फलस्वरूप इन्द्रियां भी उत्तेजित हो उठती हैं। अन्तमें इसी मानसिक विकारके कारण रात्रिके समय स्वप्नमें वीर्यस्राव होता है।

डाक्टर स्टेनली हालने जिन तीन मनुष्योंके वीर्यस्राव का हिसाब रक्खा था और जिन्हें वे पूर्णस्वस्थ, सदाचारी और विद्वान बतलाते हैं, उनके सम्बन्धमें क्या यह बात कही जा सकती, है, कि वे इन सभी प्रवृत्तियोंसे दूर रहते होंगे। स्मरण, संकल्प आदि क्रियायें मानसिक व्यभिचार हैं। इनमें प्रवृत्त होनेसे भी उसी तरह वीर्यस्राव हो सकता है, जैसे शारीरिक व्यभिचार करनेसे होता है। यद्यपि संसारमें केवल वही दुराचारी गिना जाता है, जो सहवास द्वारा अपनी कामवासनाको चरितार्थ करता है, परन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करनेपर उपरोक्त सभी प्रवृत्तियाँ दुराचार प्रमाणित होती हैं। लोग बाह्य सदाचारको देख- भले ही किसीको सदाचारी मान लें, परन्तु अन्तरंग बातें जाने बिना हम उसे सदाचारी नहीं कह सकते। जो मनसा

वाचा कर्मणा तीनों प्रकारसे सदाचारका पालन करता है, वही सदाचारी और वही ब्रह्मचारी है। जो उपरोक्त आठमें-से किसी प्रकारकी भी काम प्रवृत्तिमें संलग्न रहता है, उसे हम ब्रह्मचारी नहीं कह सकते। यदि कोई चाहे, कि हम मानसिक व्यभिचार करते हुए ब्रह्मचर्य पालन कर, तो वह असम्भव है। मानसिक व्यभिचार किंवा इन्द्रियोंकी चञ्चलताके कारण वीर्य अपने स्थानसे च्युत हो जाता है और जो वीर्य च्युत हो जाता है, वह किसी न किसी तरह क्षरित हुए विना नहीं रहता। मनका प्रभाव इन्द्रियोंपर अवश्य पड़ता है और इन्द्रियाँ चञ्चल होनेपर ब्रह्मचर्य अवश्य नष्ट होता है।

जिन्हें वीर्यस्रावका कारण जानना हो, उन्हें कामके इन आठ अंगोंपर भलीभाँति विचार करना चाहिये। विचार करनेपर उन्हें स्पष्ट दिखाई देगा, कि वीर्यस्राव आप ही आप नहीं होता, बल्कि किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक दुर्वासनामें प्रवृत्त होनेके कारण होता है। जो लोग चाहते हों, कि हमारा ब्रह्मचर्य अखंड रहे, हम वीर्यवान और शक्तिशाली होकर दाम्पत्य-जीवनका प्रकृत आनन्द प्राप्त कर, उन्हें यह आठों प्रकारकी काम प्रवृत्तिका सर्वथा त्याग करना चाहिये। उन्हें यह भलीभाँति समझ लेना चाहिये, कि प्रकृत

किंवा अप्रकृत मैथुन ही केवल ब्रह्मचर्यका बाधक नहीं है, बल्कि यह मानसिक विकार उससे भी अधिक भयंकर हैं। स्त्रीसंग करने पर प्रकृतरूपसे ही वीर्यस्राव होता है, परन्तु मानसिक विकारोंके कारण मन, मस्तिष्क और इन्द्रियाँ सभी आन्दोलित होते हैं और उनके उस प्रबल आन्दोलनके कारण स्वप्नमें अस्वाभाविक रूपसे वीर्यस्राव होता है। स्त्रीसंग करनेपर केवल इन्द्रियोंको ही परिश्रम करना पड़ता है, मस्तिष्क पर उसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु मानसिक विकारोंके कारण मस्तिष्क बड़ी बुरी तरह आन्दोलित होता है। यहाँतक, कि स्नायु एक तरहसे पीड़ित हो उठते हैं और उन्हें विवश होकर वीर्य त्याग करना पड़ता है। यही कारण है, कि स्त्रीसंग करनेपर बहुधा चित्त प्रसन्न रहता है और शरीरमें स्फूर्ति मालूम होती है, परन्तु वीर्यस्राव होनेपर शरीर शिथिल एवं क्लान्त हो जाता है। इसलिये दाम्पत्य-जीवनको सुमधुर बनानेकी इच्छा रखनेवालोंको अपने मनमें बुरे विकारोंको भूलकर भी स्थान न देना चाहिये। याद रखिये, यह मानसिक विकार ही दाम्पत्य-जीवनको विषमय बना देते हैं।

विवाह

विवाह जैसे जटिल और विवादग्रस्त विषयपर विस्तार पूर्वक विचार किया जाय, तो इस पुस्तक जैसी दो चार पुस्तकें तैयार हो सकती हैं। हमारे धर्मशास्त्रोंमें इसकी पर्याप्त विवेचना की गयी है। विवाह किस अवस्थामे करना चाहिये, कैसी स्त्री और कैसा पति पसन्द करना चाहिये—प्रभृति सभी बातोंपर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। विवाहका उद्देश बतलाते हुए उन्होंने लिखा है, कि स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरेकी सहायतासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—यह चारो पदार्थ प्राप्त करें—यही विवाह का उद्देश है। ब्रह्मचर्याश्रममें धर्ममूलक प्रवृत्तिकी शिक्षा और गृहस्थाश्रममें धर्ममूलक प्रवृत्तिकी चरितार्थता होती हैं। गृहस्थाश्रम प्रवृत्तिमें मुग्ध होकर बन्धन व अधोगति प्राप्त करनेके लिये नहीं है, परन्तु ब्रह्मचर्याश्रमसे ही जिनका एका-एक सन्यासाश्रममें अधिकार नहीं है, उनको धर्ममूलक प्रवृत्तिमार्गसे धीरे धीरे उन्नति करते हुए अन्तमें निवृत्ति-

मूलक संन्यास आश्रमके अधिकारी बनानेके लिये ही गृहस्थाश्रमका विधान किया गया है। इस लिये गृहस्थाश्रममें प्रत्येक कार्यकी विधि इस प्रकारकी होनी चाहिये, कि जिससे धर्ममूलक प्रवृत्तिकी चरितार्थतासे निवृत्तिमें रुचि हो, वासनाकी वृद्धि न होकर भाव-शुद्धि मूलक भोग द्वारा वासनाका क्षय हो और आध्यात्मिक मार्गमें उन्नति लाभ हो।

संभव है, कि विवाहका यह महान उद्देश हमारे पाठकोंके ध्यानमें न उतरे। हमने लोगोंको बहुधा यह कहते सुना है कि "पुत्रार्थे क्रियते भार्या"। इससे पता चलता है, कि लोग विवाहका उद्देश अब सन्तानोत्पत्ति ही तक परिमित रखना चाहते हैं। कुछ लोगोंने तो इससे भी आगे बढ़कर यह क्षेत्र और भी संकुचित कर दिया है। उनका कथन है, कि स्त्रियाँ बच्चे पैदा करनेकी मशीनें नहीं हैं। विवाह केवल आनन्दके लिये किया जाता है, इसलिये और सब झमेलोंको छोड़, ऐसे उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये, जिससे चिरकालतक निर्विघ्नरूपसे आनन्द प्राप्त होता रहे।

विवाहके पवित्र और धर्ममूलक उद्देशको एकदम पशुभावका रूप दे देना हम ठीक नहीं समझते। अन्य देशोंकी भाँति भारतमें स्त्री केवल विषय-विलासमें ही पतिकी सहचरी

नहीं मानी गयी। यहाँ उसे समस्त गार्हस्थ्य धर्ममें सहधर्मिणी और अर्धांशभागिनी होनेका गौरव प्राप्त है। इसलिये स्त्रीको केवल आनन्दप्राप्तिका साधन समझ उससे कामयन्त्रका काम लेना ठीक नहीं। वह सुख-दुःख और समस्त सांसारिक प्रवृत्तियोंमें पुरुषका हाथ बटाती है। उसकी सहायतासे अपनी जीवनयात्राको सुगम और निष्कण्टक बनाना यही विवाहका प्रधान उद्देश है। नित्यनैमित्तिक कर्मों द्वारा धनोपार्जन करना, नीति न्याययुक्त उपायों द्वारा धन प्राप्त करना, यथानियम सन्तानोत्पत्ति करना और अन्तमें मोक्षमार्गकी ओर अग्रसर होना—यह बातें उसके अन्तर्गत हैं।

भारतमें सम्प्रति वर्णाश्रम धर्म लोप हो गया है। जब केवल चार ही आश्रम और चार ही वर्ण थे, तब विवाह के नियम सब लोगोंके लिये एक समान ही थे। परन्तु आज हिन्दू समाज हजारों जातियां और सैकड़ों सम्प्रदायोंमें विभक्त है, अतः प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय और जातियोंके भिन्न भिन्न नियमोंके अनुसार विवाहके नियमोंमें भी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। हम इन उलझनोंमें अपने पाठकोंको न उलझा कर केवल यह बतलाना चाहते हैं, कि किन सर्वमान्य नियमोंके अनुसार आचरण करनेपर उनका दाम्पत्य-जीवन चैनसे कट सकता है।

ध्यान देने योग्य सबसे पहली बात यह है, कि जिन लोगोंने ब्रह्मचर्य धारण कर कुछ समर्थ्या संचय किया हो और जिन्होंने हस्त मैथुन किंवा वीर्यस्रावकी व्याधियोंमें पड़ अपना पुरुषत्व न खोया हो, उन्हींको विवाह करनेके लिये अग्रसर होना चाहिये। जिन्होंने अपना पुरुषत्व खो दिया हो, उन्हें भूल कर भी विवाह न करना चाहिये। ऐसा न करनेसे प्रथम ग्रासमें ही मक्षिकापात होता है और स्त्री पुरुष दोनोंको आजीवन दुःखी रहना पड़ता है।

यद्यपि विषय वासनाको चरितार्थ करना यही एकमात्र विवाहका उद्देश नहीं है, तथापि प्रकृतिकी लीला ऐसा विचित्र है, कि दाम्पत्य-जीवनमें पदार्पण करते ही लोग एकान्त सेवनके लिये व्याकुल हो उठते हैं। यह व्याकुलता स्त्री और पुरुषोंके हृदयमें विवाह होनेके बहुत पहलेसे ही डेरा डाले रहती है। किशोरावस्थासे ही लोग इन बातोंका चिन्तन करने लगते हैं, कि विवाह होनेपर हम पतिपत्नी कैसे रहेंगे और किस समय क्या करेंगे। विवाहके पवित्र उद्देश ओर दाम्पत्य विज्ञानको उन्हें शिक्षा नहीं मिलती, अतः उनसे यह आशा रखना, कि वे समझ बूझकर, सावधानीके साथ, इन्द्रिय निग्रह पूर्वक दाम्पत्य जीवन व्यतीत करेंगे—दुराशामात्र है। प्रकृति उन्हें केवल

इन्द्रिय परिचालनकी शिक्षा देती है, अतः उसके लिये उनका व्याकुल हो उठना स्वाभाविक ही है।

जो लोग शैशवकालमें ही माता पिता द्वारा विवाह बन्धनमें जकड़ दिये जाते हैं, उनके अतिरिक्त बड़ी उम्र-वालोंमें विरला ही ऐसा मिलेगा, जो विवाह होनेपर निः-संकोच भावसे सहवास न करता हो। जो लोग विद्वान, समझदार और कामशास्त्रके ज्ञाता होते हैं, वह भी उस समय इन्द्रिय निग्रह नहीं कर सकते। इस विषयका यत्कि-ञ्चित ज्ञान रखनेवाले सुकुमार बच्चोंसे लेकर वृद्ध पर्यन्त सभी कोटिके मनुष्य इन्द्रिय परिचालनके लिये व्यग्र रहते हैं।

हमारी इन बातोंसे कोई यह न समझे, कि विवाह होनेपर हम सहवास करना अनुचित समझते हैं। सह-वास तो प्रधान गार्हस्थ्य धर्म और संसारका मूल है। दाम्पत्य जीवनमें पदार्पण कर, जो इस धर्मका पालन न करे, उसे हम दोष भागी कह सकते हैं। गृहस्थके लिये सहवास परमावश्यक कर्त्तव्य कर्म है, परन्तु केवल विवाह होनेसे ही मनुष्य सहवास करनेका अधिकारी नहीं होता। इस धर्ममें प्रवृत्त होनेके पहले स्त्री पुरुष—दोनोंको अपनी अवस्था, अपना सामर्थ्य, अपनी स्थिति और देशकालादि

बातोंपर विचार कर लेना चाहिये। इन सब बातोंका विचार न करनेसे स्वास्थ्य और यौवन कैसे नष्ट हो जाता है, स्त्री और पुरुष दोनोंका जीवन कैसा दुःखमय हो जाता है—इन बातों पर हम आगे चल कर भलीभांति विचार करेंगे।

आश्रम धर्मका लोप हो जानेके कारण सम्प्रति भारत-वासियोंका विवाहकाल प्रायः अनिश्चित हो गया है। जाति और सम्प्रदायगत लौकिक प्रथाओंके अनुसार भिन्न भिन्न जातिके पुरुषोंका विवाह जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त हुआ करता हैं। किसी जातिमें जन्मते ही, किसी जातिमें दश पांच वर्षकी अवस्थामें और किसी जातिमें पन्द्रह बीस वर्षकी अवस्थामें पुरुषोंका विवाह कर दिया जाता है। इसके बाद वृद्धावस्था पर्यन्त विवाह करनेका अधिकार भी प्रायः समस्त जातिके पुरुषोंने सुरक्षित रक्खा है। स्त्रियोंके विषयमें भी प्रायः यही नियम है। जन्मसे लेकर बारह तेरह वर्षकी अवस्थाके पहलेपहले अधिकांश स्त्रियोंका विवाह कर दिया जाता है। पन्द्रह सोलह वर्षकी अवस्थामें भी कई जातियोंमें विवाह होता है, परन्तु इससे अधिक उम्रकी अविवाहिता स्त्री बहुत कम दिखाई देती हैं। विधवा हो जानेपर पुरुषोंकी तरह पुनर्विवाह करनेका

अधिकार भी कुछ उच्च वर्णके हिन्दुओंको छोड़ अधिकांश जातिकी स्त्रियोंको प्राप्त है। इस तरह, हम देखते हैं, कि आजकल विवाह करना नित्यका एक धन्धा या हंसी खेल हो पड़ा है। इस अनियमित प्रवाहको रोकना, अब किसीके अधिकारकी बात नहीं रही। जब इस भयंकर विश्रृङ्खलताके कारण सर्वनाशका समय उपस्थित होगा, तब आपोआप लोगोंकी आंखे खुलेंगी और वे ऋषिमुनि निर्धारित आश्रम धर्मके प्राचीन नियमोंके पालनार्थ प्रस्तुत होंगे; सम्प्रति इस सम्बन्धमें हमें कोई आशा नहीं, अतः हम अधिक लिखना भी व्यर्थ समझते हैं।

विवाह एक सामाजिक और धार्मिक बन्धन है। अपनी अपनी जाति और अपने अपने धर्मके अनुसार किसी-न किसी तरह निपटा लिया जाता है। इसको हम लौकिक आचारके सिवा और कुछ नहीं कह सकते। प्रकृत विवाह तो वही है, जब स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरेके सहायक बन प्रजोत्पत्ति करने और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष साधने योग्य अवस्था प्राप्त कर परिणय सूत्रमें आबद्ध हों और सानन्द अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करें। यदि हम विवाहके मोक्ष साधनादि महान उद्देशोंको किनारे रख दें और केवल सन्तानोत्पत्तिहीको विवाहका एकमात्र-

उद्देश मान लें, तब भी इस बातका विश्वास नहीं दिलाया जा सकता, कि आजकल जिस अवस्थामें विवाह किया जाता है, उस अवस्थामें मनुष्य वह कार्य सुचारु रूपसे चला सकता है। चिरकाल तक स्वास्थ्य और यौवन कैसे स्थिर रक्खा जा सकता है, सुन्दर, गुणवान और हृष्टपुष्ट सन्तान कैसे उत्पन्न की जा सकती है—इन बातोंको वह दुधमुंहे बच्चे कैसे समझ सकते हैं? विवाहके समय दोनोंकी कमसे कम उतनी अवस्था अवश्य होनी चाहिये, कि वे अपने कर्त्तव्य कर्मोंको भली भांति समझ सकें। ऐसी अवस्था प्राप्त होनेके पहले जो विवाह किये जाते हैं, उन्हें हम प्रकृत विवाह नहीं कह सकते। जिस विवाहसे विवाहका उद्देश सिद्ध हो, वही प्रकृत विवाह है। ऋषि मुनियोंके मतानुसार कमसे कम सोलह वर्षकी स्त्रियां और पचीस वर्षके पुरुष इस धर्मको भली भांति निबाह सकते हैं।

परन्तु हम पहले ही कह चुके, कि इस प्रवाहको रोकना अब किसीके सामर्थ्यकी बात नहीं रही। इसे हम लोकाचार खुशीसे मान सकते हैं, परन्तु इसकी जड़ अब इतनी मजबूत हो गयी है, कि कोई उसे तिलभर भी इधर उधर नहीं कर सकता। सामाजिकता और धार्मिकताका इस

कुप्रथा पर इतना गहरा रंग चढ़ गया है, कि प्रलयके पहले शायद ही वह छूट सके। लोग चाहें तो इस सामाजिक और धार्मिक कहलानेवाले बन्धनको आसानीसे तोड़ सकते हैं। कोई भी मनुष्य यह कह सकता है, कि मैं अपनी लड़कीका विवाह सोलह और लड़केका विवाह पचीस वर्षकी अवस्थाके पहले न करूंगा। परन्तु इसके लिये चाहिये साहस और आत्मबल। इन बातोंका जन साधारणमें प्रायः अभाव ही पाया जाता है। इसके पहले भी चाहिये इस बातकी समझ, कि बचपनमें ब्याह करनेसे न केवल बच्चोंका ही अनिष्ट होता है, बल्कि स्वदेशका भी अपकार होता है, परन्तु यह सब बड़ी दूरकी बातें हैं। समाजके बन्धनोंको देश-कालानुसार बदल देनेका तो किसीको विचार ही नहीं आता। आ भी कैसे सकता है? जिस शिक्षासे इन विचारोंका उदय हो सकता है, उस शिक्षाका ही अभाव है। जब मूल ही नहीं, तब शाखा और पत्र कहांसे हों? देशमें अविद्याका घोर अन्धकार छाया हुआ है। उसी अविद्याके कारण, माता पिता अपने नन्हे नन्हे बच्चोंको विवाहके बन्धनमें जकड़ देनेके लिये लालायित हो उठते हैं। विवाहका विचार पहलेपहल उन्हींके हृदयको आन्दोलित करता है। विचारे बच्चे विवाह क्या चीज है और क्यों

किया जाता है, यह समझनेके पहले ही नव विवाहिता वधूके साथ कोठड़ीमें बन्द कर दिये जाते हैं। माता पिता अपने बच्चोंको, बच्चोंकी सृष्टि करते देख आनन्दसे पुलकित होने लगते हैं।

आजकल भारतवर्षको यही दशा है। सर्वत्र यही होता है। परन्तु हम अपने पाठकोंको भली भांति बतला देना चाहते हैं, कि धार्मिक तथा सामाजिक बन्धनोंका बहाना कर आप अपना व्याह भले ही छोटी अवस्थामें कर लें, परन्तु शयन-गृहमें बिना योग्यता प्राप्त किये पदार्पण न करें। विवाहके सम्बन्धमें आप यह कह सकते हैं, कि हमें मजबूरन छोटी अवस्थामें व्याह करना पड़ा, समाज और स्वजनोंने हमें वैसा करनेके लिये बाध्य किया; परन्तु सहवासके सम्बन्धमें आप वैसा नहीं कह सकते। इसके लिये कोई किसीको मजबूर नहीं करता। यदि आपमें कुछ भी समझ हो, तो आप असमयमें ही सन्तानोत्पत्तिकी अनधिकार चेष्टा न करें। आप उचित समयतक इन्द्रिय-निग्रहकर अपने स्वास्थ्य और यौवनको चिरस्थायी बना सकते हैं, सुन्दर और दीर्घायु सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। यह आपके हाथकी बात है। केवल थोड़ीसी समझ और थोड़ासा आत्मबल चाहिये और कुछ नहीं। इतनेहीसे

आप अपना और अपने देशका मुख उज्ज्वल कर सकते हैं। किन्तु यदि आपका और आपकी सहधर्मिणीका स्वास्थ्य सन्तोषजनक हो, दोनों जनकी अवस्था सन्तानोत्पत्तिका कार्य सुचारुरूपसे चलाने योग्य हो गयी हो और दोनों जनने दाम्पत्य-विज्ञानका ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, तो निःसंकोच भावसे शयनगृहमें पदार्पण कर गार्हस्थ्य-धर्मका पालन कर सकते हैं।
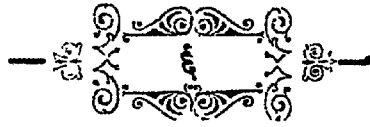
शयन-गृह
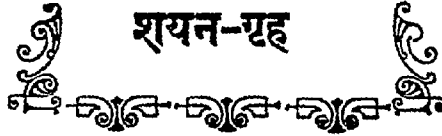
शयनगृह नव-दम्पत्तियोंके लिये नन्दनवन, गृहस्थोंके लिये तपोभूमि और विलासियोंके लिये स्वर्ग है। शयनगृहमें ही नवदम्पति संसारके समस्त दुःखोंको भूलकर अमरावतीके देवताओंकी भाँति विचरण करते हैं। शयनगृहमें ही धर्मपरायण गृहस्थ सृष्टिकार्यका समारंभ कर पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये अग्रसर होते हैं। शयनगृहमें ही विलासियों-को अनिर्वचनीय सुख और शोकसन्तप्त मनुष्योंको यत्-किञ्चित शान्ति प्राप्त होती है। शयनगृहमें ही कुल, जाति और देशका मुख उज्ज्वल करनेवाली मानव-सन्तानका भाग्य निर्मित होता है, अतः शयनगृहके सम्बन्धमें प्रत्येक मनुष्यको आवश्यक ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

दुर्भाग्यवश भारतवासियोंकी दशा आजकल इतनी हीन हो रही है, कि वे अपने रहनेके लिये समुचित निवास-

स्थानका भी प्रवन्ध नहीं कर सकते। जिन्हें ईश्वरने ऐश्वर्य दे रक्खा है, जिनपर लक्ष्मीकी कृपा है, वे भले ही गगन-स्पर्शी अट्टालिकायें खड़ीकर आनन्दसे रह लें, किन्तु जो लोग साधारण कोटिके हैं, जिनकी आय परिमित है, वे इस सौभाग्यसे वञ्चित ही देखे जाते हैं। शहरमें रहनेवाले आजकल अधिक सुखी समझे जाते हैं, परन्तु इस वातमें वे एक देहातीकी समता कदापि नहीं कर सकते। शहरसे दूर रहनेवाला एक गरीवसे गरीव ग्रामीण भी खाने पकाने और सोने वैठनेके लिये भिन्न-भिन्न स्थानों-की योजना करता है, परन्तु शहरमें रहनेवाले भले भले गृहस्थ भी निवासस्थान, रन्धनशाला और शयनगृह प्रभृति स्थान भिन्न-भिन्न नहीं रख सकते। दिनमें जो स्थान चौकेका काम देता है, उसे रात्रिको शयनगृह वना लेना एक साधारण वात है, किन्तु शहरोंमें यहाँतक देखा गया है, कि एक ही कोठड़ीमें कपड़ेके पड़दे लगा लगाकर अनेक दम्पति शयन करते हैं। ऐसी दशामें शयनगृहके सम्बन्धमें लम्बी चौड़ी वातें लिखते हमें संकोच मालूम होता है। फिर भी इन वातोंको हम इसलिये लिख रहे हैं, कि जिन वन्धुओंको ईश्वरकृपासे सव वातोंकी सुविधा हो वह केवल अज्ञानताके कारण इस सुखसे वञ्चित न रहें।

शयनगृह जितना ही बड़ा और हवादार हो, उतना ही अच्छा है। जिस कमरेमें गुरुजनोंका आवागमन हो, उसे शयनके लिये पसन्द करना ठीक नहीं। जो स्थान पसन्द किया जाय, वह सुन्दर, नेत्ररञ्जक और रमणीय होना चाहिये। वन उपवन और वाटिकाओंमें इसके लिये प्रबन्ध किया जा सके, तो बहुत ही अच्छा है। अन्यथा किसी एकान्त कमरेको ही इसके लिये पसन्द करना चाहिये। उस कमरेकी सजावट और व्यवस्था ऐसी रखनी चाहिये, जिससे आनन्द और शांतिपूर्वक सुखकी नींद सोई जा सके। शयनगृहका फर्श यदि मिट्टीका हो, तो लिपापुता हुआ और पक्का हो, तो धोधाकर साफ रखना चाहिये। दीवारें साफ और चूनेसे पुती हुई होनी चाहिये। कमरा हवादार अवश्य हो, परन्तु उसमें पलंग या शैय्या इसप्रकार रखनी चाहिये, जिससे हवाका झोंका सीधा शरीरमें न लगे। इससे कभी कभी स्वास्थ्यको हानि पहुंचती है। यदि शहर हो और कमरेमें बिजलीका पंखा हो, तो उसे बीच कमरेमें रखना चाहिये, परन्तु ठीक उसके नीचे सोनेसे शरीर अकड़ जाने या शरदी लग जानेकी सम्भावना रहती है। बैठने और पढ़ने लिखनेके लिये आवश्यकता हो, तो एक ओर टेबिल व कुरसियाँ भी रखनी

चाहिये। शयनगृहमें घड़ी हो तो बहुत ही अच्छा है। इससे सोने और उठनेका समय ठीक रखनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

शयनगृहमें सुन्दर और सुशोभित चित्रादि रखना बहुत ही आवश्यक है। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि सन्तानोत्पत्ति करते समय मातापिता जिन पदार्थों या दृश्योंको देखते हैं, उनका भावी सन्तानपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। भले और सुन्दर मनुष्योंके चित्र देखनेसे भली और सुन्दर तथा बुरे चित्रोंको देखनेसे बुरी सन्तान उत्पन्न होती है। शयनगृहमें न केवल सुन्दर मनुष्योंके ही चित्र रखने चाहिये, बल्कि हरे भरे वनवृक्ष, पुष्पलतायें, सुन्दर पशुपक्षी और प्राकृतिक दृश्यके ऐसे सुशोभित चित्र भी रखने चाहिये, जिनके दर्शनसे प्रसन्नता प्राप्त हो। जिन चित्रोंको देखनेसे भय, शोक, ग्लानि और चिन्ता उत्पन्न हो, उन्हें शयनगृहमें कदापि स्थान न देना चाहिये।

तरह तरहके सुन्दर खिलौने, गाने बजानेका शौक हो तो हारमोनियम सितार आदि बाजे तथा अन्यान्य सुशोभित वस्तुओंसे कमरेको भरसक सजाना चाहिये। दीवारों पर हो सके तो स्वर्णोपदेशके तख्ते टांग देना चाहिये। इससे उठते बैठते भली बातोंका स्मरण रहता है और

चित्तको शांति मिलती है। इस प्रकार सजे हुए कमरेमें सोनेसे चित्त प्रफुल्लित और प्रसन्न रहता है अथच निद्रा भी खूब आती है।

शयनगृहके साथ साथ शयन स्थानका भी ध्यान रखना चाहिये। पलंग पर सोनेसे वात, पित्त और कफ—तीनों प्रकारके रोग शान्त होते हैं। झूलेपर सोनेसे वात और कफकी शांति होती है। भूमिपर सोना अधिक अनुचित नहीं; परन्तु इससे कभी कभी वात रोग हो जानेकी सम्भावना रहती है। तख्ते पर सोनेसे भी वातका प्रकोप बढ़ता है। इसलिये सोनेका स्थान बहुत सोच समझ कर निश्चित करना चाहिये। निश्चित करते समय देश, काल और स्थल आदि विषयोंपर भली भांति विचार कर लेना चाहिये।

शैय्या कोमल और गुदगुदी होनी चाहिये। ऊपरी चद्दर साफ सुथरी और चिकनी होनी चाहिये। बनात या कम्बलका बिस्तरा भी अच्छा होता है, परन्तु रूईका गद्दा अधिक पसन्द करने योग्य है। सोते समय शरीरसे पसीना निकलता है, अतः शैय्या खराब हो जाती है और उसमें दुर्गन्ध आने लगती है। इसलिये प्रतिसप्ताह कमसे कम उसे एकबार धूप अवश्य खिलाना चाहिये

शरीरको आराम पहुंचानेके लिये तकियोंका व्यवहार किया जाता है। किसी किसीको बहुत तकियोंकी जरूरत पड़ती है, परन्तु यह ठीक नहीं। शिरके नीचे एक तकिया रखना काफी है। परन्तु वह भी मुलायम और गुदगुदा होना चाहिये। बहुत ऊंचे तकियेका व्यवहार करना शरीरके लिये हानिकर है। उत्तम शैय्यामें शयन करनेसे शरीर पुष्ट होता है। निद्रा खूब आती है, वीर्यकी वृद्धि होती है और धैर्य तथा शक्ति प्राप्त होती है।

बहुधा यह देखा जाता है, कि पति और पत्नी दोनों एक ही शैय्यामें विश्राम करते हैं। यद्यपि यह निन्दनीय नहीं है, तथापि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे दोनोंका एक दूसरेसे अलग सोना परमावश्यक है। यह तो सभी लोग जानते हैं, कि स्वास लेते समय जो हवा बाहर निकलती है, वह विषैली और स्वास्थ्यके लिये हानिकर होती है। एक साथ सोनेसे वही हवा दोनोंके स्वासमें जाती है और शनैः शनैः स्वास्थ्यको हानि पहुंचाती है। यदि दोमेंसे किसी एकको दमा खांसी या क्षय आदिकी बीमारी हुई, तो उसके कीटाणु स्वास द्वारा दूसरेके शरीरमें प्रवेश कर, उसे भी रोगी बना देते हैं।

वैज्ञानिकोंके मतानुसार एक साथ सोनेमें और भी एक

दोष है। उनका कथन है, कि स्त्री और पुरुष दोनोंके शरीरमें एक प्रकारकी बिजली रहती है, जो एक दूसरेका स्पर्श होते ही शरीर भरमें दौड़ जाती है और नस-नसमें बिलक्षण जागृति उत्पन्न कर देती है। इसी आकर्षण या बिजलीके कारण पुरुषके स्पर्शसे स्त्रीकी और स्त्रीके स्पर्शसे पुरुषकी काम वृत्ति जागरित होती है। एक साथ सोनेसे यह अद्भुत आकर्षण नष्ट हो जाता है। फिर स्त्रीके स्पर्शसे न पुरुषहीके मनमें हलचल पैदा होती है, न पुरुषके स्पर्शसे स्त्रीके हो हृदयमें सनसनो फैलती है। वास्तवमें यही आकर्षण सांसारिक सुखका मूल है। इसके नष्ट हो जानेसे जीवन प्रायः नीरस हो जाता है।

इसके विपरीत स्त्री पुरुषोंका एक साथ सोना कभी कभी लाभजनक भी हो पड़ता है। यह देखा गया है, कि जिन स्त्री पुरुषोंमें कलह और मनोमालिन्य रहता है, उनमें एक साथ सोनेसे प्रेम उत्पन्न हो जाता है। विलायतके एक दम्पतिमें बड़ा मनोमालिन्य रहता था। अतः स्त्री पुरुष दोनोंने एक दूसरेसे मुक्ति लाभ करनेके लिये दावा किया था। न्यायाधीश बड़ा चतुर था। उसने मामलेकी जाँचकर आज्ञा दी, कि पहले तुम दोनों जन सातदिन तक एक शैय्यामें शयन करो, इसके बाद मेरे

पास आना, मैं न्याय कर दूंगा। विवश हो दोनों एक शैय्यामें शयन करने लगे। केवल खाने पीनेके समयको छोड़ और किसी समय कोई उनके पास न जाता था। आठवें दिन जब दोनों जन न्यायाधीशके पास गये तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया, कि अब हम दोनोंमें प्रेम हो गया है, अतः हम अलग होना नहीं चाहते। इस प्रकार एक साथ सोनेसे कभी कभी पारस्परिक स्नेहमें वृद्धि भी होती है, परन्तु यदि मामला ऐसा न हो, तो कभी एक साथ न सोना चाहिये।

एक साथ सोनेसे सबसे बड़ी हानि यह होती है, कि पति पत्नीको सदैव कामका चिन्तन हुआ करता है और वे अपेक्षा कृत अधिक वार समागमकर स्वास्थ्य खो बैठते हैं। पृथक पृथक शैय्याओंमें शयन करनेसे ऐसा होनेकी सम्भावना बहुत कम रहती है। परन्तु इन बातोंका तात्पर्य यह नहीं है, कि पति पत्नी कभी एक साथ शयन ही न करें। उचित यह है, कि शयनगृहमें दो भिन्न शैय्यायें रक्खी जायें और जब तक निद्रा न आवे, तबतक एक साथ रहा जाय, किन्तु निद्रा आते ही अपनी अपनी शैय्यामें चला जाया जाय। यह भी आवश्यक है, कि शयनगृहमें दुधमुंहे बच्चोंके अतिरिक्त और बच्चे न रहें। माता

पिताकी प्रवृत्ति और उनके वार्तालापका नादान बच्चोंपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। उन्हें नादान समझकर उनकी उपेक्षा न करनी चाहिये।

सोते समय पहननेके कपड़े हलके और साफ सुथरे होने चाहिये। हो सके तो उन्हें रखनेके लिये शयनगृहमें ही अलमारी आदिका प्रबन्ध करना चाहिये। साथ ही यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है, कि स्त्री पुरुषको एक दूसरेके निकट दिगम्बरावस्थामें कदापि न सोना चाहिये। ऐसा करनेसे न केवल मर्यादा ही भंग होती है, बल्कि पारस्परिक आकर्षण भी घट जाता है।
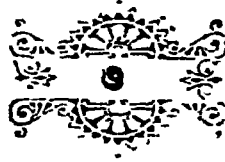
प्रेमोपचार

गार्हस्थ्य-धर्म पालन करनेके लिये जो लोग शयन-गृहमें पदार्पण करें उन्हें सर्वप्रथम प्रेमकी महिमा भली भांति समझ लेनी चाहिये। प्रेम शब्द देखनेमें तो बड़ा छोटा—केवल ढाई ही अक्षरका है, परन्तु उसकी महिमा इतनी गहन और इतनी अनन्त है, कि सहस्र सहस्र योगीयती, ज्ञानीध्यानी ऋषिमुनि और लेखक तथा कवि अनादि कालसे उसका गान करते चले आ रहे हैं, किन्तु अबतक किसीने अन्त नहीं पाया। वास्तवमें प्रेम ही संसारका सार, विश्वका मूल, और प्राणियोंका प्राण है। प्रेम ही पर इस सृष्टिका विकास अवलम्बित है। संसारमें यदि प्रेमका अस्तित्व न होता, तो विना प्रलय हुए ही उसका सर्वनाश हो गया होता और इस धरातलपर महासागरकी उत्ताल तरंगे क्रीड़ा करने लगी होतीं। कोई किसीको पहचानता भी

नहीं और मुँहसे बोलता भी नहीं। संसारमें जो कुछ होता है, जो कुछ दिखायी देता है, उस सबका कारण केवल प्रेम ही है। माता और पुत्र, भाई और बहिन, पति और पत्नी आदि स्वजनों किंवा सामान्य मनुष्योंमें एक दूसरेके प्रति जो प्रेम भावना होती है, उसे पोषनेके लिये ही प्रवृत्तियोंका जन्म होता है। यदि एक मनुष्य स्वजनोंके प्रेम जालमें जकड़ा हुआ न हो, तो उनकी उदर-पूर्त्ति के लिये वह धनोपार्जनकी प्रवृत्तिमें पड़े ही नहीं। यदि ईश्वरके प्रति प्रेम-भावना न हो, तो साधु पुरुष जपतप करें ही नहीं। इन बातोंपर विचार करनेसे मालूम होता है, कि संसारकी समस्त प्रवृत्तियोंका मूल केवल प्रेम ही है।

प्रेम ईश्वर प्रदत्त वस्तु है। मनुष्य मात्रको उसने यह बड़ी उदारताके साथ प्रदान की है। जिस मनुष्यके हृदयमें प्रेम न हो, उसे हम हृदयहीन कह सकते हैं। प्रेमकी भावना जन्मसे ही मनुष्यके हृदयमें बीज रूपसे विद्यमान रहती है। धीरे धीरे यह बीज अंकुरित होता है और शनैः शनैः संसारकी वस्तुओंपर अधिकार जमा लेता है। बच्चेका प्रेम पहलेपहल अपने माता पिता पर, फिर भाई बहन तथा स्वजनोंपर, और तदनन्तर संसारकी अन्यान्य वस्तु तथा मनुष्योंपर होता है। जो जितना

ही बुद्धिमान, गुणवान, सतोगुणी और धर्म तथा कर्मनिष्ठ होता है, उतना ही उसका प्रेमभाव बढ़ता जाता है। यही कारण है, कि ज्ञानी और उदारचरित मनुष्य सबको अपना लेते हैं। उन्हें समस्त संसार अपना परिवार सा दिखायी देने लगता है। इसीको विश्वप्रेम कहते हैं। यह प्रेम-भावना बढ़ते बढ़ते अंतमें प्रकृतिकी सीमामे जा पहुंचती है और बादको उसकी भी सीमा उल्लंघन कर परमात्मामें पहुंचकर उसीमें तन्मय हो जाती है। इसीको शास्त्रकारोंने मोक्ष या निर्वाण कहा है।

इस प्रकार मनुष्यकी प्रेम-लता स्वजनोंसे लेकर प्राणी मात्रपर अधिकार जमाती है। जितना ही इसे पोषण मिलता जाता है, उतना ही यह बढ़ती जाती है। पोषण न मिलनेसे जैसे वृक्ष और वन लताओंकी वृद्धि रुक जाती है, वैसे ही प्रेम भी परिमित सीमाके अन्दर ही रह जाता है। यही कारण है, कि किसीका प्रेम अपनी स्त्रीही तक, किसीका अपने स्वजनों ही तक और किसीका दस ही बीस मनुष्योंतक परिमित रहता हैं।

हम पहले ही कह चुके, कि बाल्यावस्थामें बच्चोंका प्रेम अपने मातापिता भाईबहन और स्वजनों तक ही परिमित रहता है। ज्यों ज्यों वह बड़ा होता जाता है, त्यों त्यों उसके प्रेम-

पात्र भी बढ़ते जाते हैं। दस पन्द्रह वर्षकी अवस्था होते न होते सैकड़ों मनुष्य इष्टमित्रके रूपमें उसकी प्रेम-लतिकाकी शीतल छायामें विश्राम करने लगते हैं। परन्तु इन सबोंसे मनुष्यको सन्तोष नहीं होता। यौवनावस्थामें पदार्पण करते ही वह एक ऐसे प्रेमपात्रकी खोज करने लगता है, जो उसके सुख दुःख और जीवन मरणका संगी हो। जो विपत्तिमें धैर्य और शोकमें सान्त्वना दे सके। जो सुख और आनन्दके समय प्रेमोपचार द्वारा उसमें वृद्धि कर सके। ऐसा संगी प्राप्त करनेके लिये स्त्री और पुरुष दोनोंका हृदय समान रूपसे व्याकुल हो उठता है। वे सतृष्ण नेत्रोंसे चारों ओर देखने और उसकी खोज करने लगते हैं। पराग-लोलुप मधुकर जैसे एकके बाद दूसरे और दूसरेके बाद तीसरे फूल पर उड़ उड़ कर बैठता है, वैसे ही उनका चित्त भी अपने आसपासके जनसमुदायमें भटकने लगता है और जबतक कोई प्रेमपात्र नहीं मिलता तबतक अस्थिर बना रहता है।

विवाह होनेपर स्त्री और पुरुषोंकी इस प्रवृत्तिका अन्त आता है। स्त्रियोंको तो आरम्भहीसे इस बातकी शिक्षा दी जाती है, कि पति ही तुम्हारा जीवनधन, पति ही तुम्हारा उपास्यदेव और पति ही तुम्हारा जीवनसर्वस्व है। उनके

जीमें यह बात भलीभांति बैठा दी जाती है, कि स्त्रीके लिये पति भिन्न और गति नहीं है, अतः विवाह होते ही उनकी समस्त चञ्चलता, समस्त भाव और समस्त प्रवृत्तियां चारों ओरसे सिमटकर पति देवके चरणमें केन्द्रीभूत हो जाती हैं। वे पर पुरुषकी ओर आंख उठाकर देखना भी पाप समझने लगती हैं, परन्तु पुरुषोंके सम्बन्धमें ऐसा नियम नहीं है। सदाचारी पुरुष निःसन्देह स्त्रियोंहीकी भांति मनसा वाचा कर्मणा एकपत्नी-व्रत धारण करते हैं, परन्तु अधिकांश पुरुष ऐसा नहीं करते—शायद चेष्टा करने पर भी नहीं कर पाते।

इसका प्रधान कारण यह है, कि स्त्रियोंकी भांति पुरु-षोंके लिये कठिन नियमोंकी सृष्टि नहीं की गयी। जैसे स्त्रियोंको इस बातकी शिक्षा दी जाती है, कि उनके लिये पति भिन्न और गति नहीं है, उस तरह पुरुषोंको यह बात नहीं सुझाई जाती, कि एक पत्नीव्रत-धारण ही पुरुषका एकमात्र कर्तव्य है। स्त्रियोंका कथन है, कि पुरुषोंने ही इन नियमोंकी सृष्टि की है अतः उन्होंने पक्षपातसे काम लिया है। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं, कि विवाह होनेपर स्त्रियां जिस प्रकार अपना तनमन और सर्वस्व पतिदेवके चरणोंपर चढा देती हैं, उस प्रकार पुरुष समुदाय

स्त्रियोंके निकट आत्म-समर्पण नहीं करता। इससे कोई यह न समझे, कि संसारमें सर्वत्र ऐसा ही होता है—सभी पुरुष ऐसा ही करते हैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अधिकांश पुरुष ऐसा ही करते हैं। यदि स्त्रियोंकी भांति पुरुष मात्र अपना अपना हृदय अपनी हृदयेश्वरीको अर्पण कर दें, तो मृत्युलोक ही स्वर्गके रूपमें परिणत हो जाय और मनुष्य ही देवताओंके नामसे सम्बोधित होने लगें।

परन्तु पुरुष समुदायसे वैसी आशा रखना दुराशा मात्र है। विवाह होनेके पहले ही उनका मन-चञ्चरीक जहां जहां मधुर रस देखता है, वहां वहां मन-स्थिति करने लगता है। स्त्रियोंकी भांति उन्हें एक ही पात्रको आत्मसमर्पण करनेकी शिक्षा नहीं मिलती, अतः विवाह होनेके बाद भी बहुतोंका यही क्रम चला करता है। फल यह होता है, कि बहुतोंकी स्त्रियां हताश हो पथभ्रष्ट हो जाती हैं और बहुतोंकी स्त्रियां प्रेम-भिक्षाके लिये अञ्चल फैलाये हुए ही मृत्युको गोदमें प्रश्रय ग्रहण करती हैं।

एकपत्नी-व्रतकी शिक्षाका अभाव होनेके कारण जो पुरुष एक अभिन्न-हृदय संगी प्राप्त करनेके लिये व्याकुल रहते हैं, जो इस बातको सोचा करते हैं, कि एक उपयुक्त साथी मिले तो चित्त शान्त हो, वे उसके मिल जानेपर

भी वैसे ही चञ्चल और अशान्त बने रहते हैं। हमारे धर्म-शास्त्रोंमें एक पत्नीव्रतकी भूरि भूरि प्रशंसा की गयी है, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रने इसका आदर्श भी सामने रक्खा था, परन्तु आज हमलोग वह सब भूल गये हैं। संसारमें आज एक भी ऐसा स्कूल नहीं, जहां पथभ्रष्ट पुरुषोंको विवाहिता स्त्रीके निकट आत्मसमर्पण करनेकी शिक्षा दी जाती हो। किसी सरकारकी कानून-पोथीमें ऐसा नियम नहीं, कि जो पुरुषोंकी इस निरंकुशतापर अंकुश रखता हो।

जैसे स्त्रियां विवाह होनेपर पतिको ही अपना जीवन सर्वस्व मान लेती हैं, वैसे ही पुरुषोंको भी चाहिये, कि अपनी अनर्गल प्रवृत्तिको एकदम रोककर अपनी हृदयेश्वरीमें अपना चित्त केन्द्रीभूत करें। स्त्रियां पुरुषकी अर्धाङ्गिनी कही जाती हैं। पुरुषके प्रेमपर स्त्रीका जितना अधिकार है, उतना और किसीका नहीं। इसलिये पुरुषको विवाह होते ही चारों ओरसे अपने चित्तको खींच लेना चाहिये और जितना हो सके उतने प्रेमके साथ अपना हृदय उस हृदयेश्वरीको सौंप देना चाहिये। उसे भली भांति समझ लेना चाहिये, कि जिस वस्तुका एक अधिकारी नियत हो चुका, उसे अब किसी दूसरेको देनेका हमें कोई अधिकार

नहीं। यही दाम्पत्य प्रेम है। यही जीवनको सुखमय बनानेका मूल मन्त्र है।

विवाह होते ही पुरुषमात्र शयनगृहमें पदार्पण करते हैं। लाख लज्जा और संकोच होनेपर भी स्त्रियाँ उनके स्वागतके लिये तैयार रहती हैं। जिसके चरणोंपर अपना तनमन सर्वस्व चढ़ा चुकीं, उसके स्वागतके लिये भला वे क्यों न तैयार रहेंगी? पतिको देखते ही, दासी भावसे वे उसे आत्मसमर्पण कर देती हैं। पतिदेव चाहे जो करें, वे कुछ न कहेंगी। धर्म और समाज-शास्त्र उन्हें कुछ कहनेकी आज्ञा भी नहीं देता।

भारतकी स्त्रियोंका यही हाल है। भलाबुरा, रोगी दोषी, मूर्ख किंवा व्यसनी चाहे जैसा पति हो, वे उसे आत्म-समर्पण करना अपना परम कर्त्तव्य समझती हैं। संसारकी और किसी जातिके नारी-समुदायमें यह भाव नहीं पाया जाता। भारतकी स्त्रियाँ अभी इस धर्मको निबाहे जाती हैं। उन्हींके पुण्यसे भारत भूमि अबतक स्थिर है, वरना पुरुषोंका अत्याचार इतना अधिक बढ़ गया है, कि एकबार ही उनके भारसे आक्रान्त हो भारत धरा रसातलको चली गई होती।

स्त्रियोंका आत्मसमर्पण और पुरुषोंकी उदासीनता

देखकर यही कहना पड़ता है। यद्यपि स्त्रियां प्रकट रूपसे कुछ भी नहीं कहतीं, परन्तु उनका हृदय पुरुषोंसे प्रतिफलकी आशा अवश्य रखता है। नारी-हृदय चाहता है, कि मेरी ही भाँति पुरुष भी आत्मसमर्पण कर दे और हम दोनों अभिन्न, अभेद एवम् एकहृदय हो जायें, हम दोनोंका द्वन्द मिट जाय।

पुरुषोंको चाहिये, कि नारी-हृदयकी इस अभिलाषाको अनुभव कर उसकी पूर्त्ति करें। आत्मसमर्पणका बदला आत्मसमर्पणसे दें। शयनगृहमें केवल पाशविक भावोंको न लेकर प्रेमकी डालीके साथ अपनी हृदयेश्वरीको मन-मन्दिरके सर्वोच्च सिंहासनपर बिठानेके लिये पदार्पण करें। जो लोग इसप्रकार प्रेमका प्रतिदान कर स्त्रियोंको सन्तुष्ट रखते हैं, वे इस संसारमें कभी मानसिक कष्टसे कष्टित नहीं होते। उनकी हृदयेश्वरी सदैव उनकी रक्षाके लिये प्रस्तुत रहती है।

जिसके हृदयमें प्रेम न हो, उसे केवल अपनी काम वासना चरितार्थ करनेके लिये शयनगृहमें पदार्पण न करना चाहिये। बिना प्रेमकी काम प्रवृत्ति पाशविक अत्याचार है। पाशविक ही क्यों, उसे राक्षसी अत्याचार कहना चाहिये। पशु पक्षी तो भूलकर भी ऐसा अत्याचार नहीं

करते। प्रेमोपचार द्वारा भली भांति अपनी मादाको रिझाने और उसकी कामवृत्ति जागरित करनेके बाद ही पशुपक्षी और कीट पतंग इस प्रवृत्तिमें पड़ते हैं। भ्रमरकी गुञ्जार, कोयलकी कूक और पक्षियोंका कलरव, प्रेमोपचारके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पशुओंमें भी यही बात पायी जाती है। वे भी अपनी मादाको अनेक प्रकारसे खुश करनेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु मनुष्य जातिका इतना अधःपात हो गया है, कि उसे इसकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। लोग कामेच्छा जागरित होते ही स्त्रियोंपर अत्याचार कर बैठते हैं। उस उमय वे यह नहीं सोचते, कि प्रेमोपचार द्वारा स्त्रीको प्रसन्न कर उसकी भी कामवासना जागरित कर देना परम कर्तव्य है। वे केवल अपनी ही मनस्तुष्टिका ध्यान रखते हैं। स्त्रीकी कामवासना जागरित हुई है या नहीं, उसकी इच्छा है या अनिच्छा—यह जाननेकी वे चेष्टा नहीं करते। शायद आवश्यकता ही नहीं समझते। उन्हें केवल अपने कामसे काम। स्त्रियोंकी उन्हें कोई परवाह नहीं रहती। ऐसी दशामें कभी कभी स्त्रियोंकी कामवासना जागरित होनेके पहले ही पुरुषोंकी क्रियासमाप्ति हो जाती है। इसे हम अत्याचारके अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं।

वैज्ञानिकोंका कथन है, कि जिस समय स्त्री और पुरुष दोनोंकी कामवासना समान रूपसे जागरित हो, उसी समय उन्हें इस प्रवृत्तिमें पड़ना उचित है। यदि इस बातपर ध्यान नहीं दिया जाता, तो न आनन्द ही प्राप्त होता है, न अच्छी सन्तान ही उत्पन्न होती है। अतः पुरुषोंको चाहिये, कि काम प्रवृत्तिमें पड़नेके पहले, विविध मनोरञ्जन, प्रेमालाप और ऐसे ही उपचारों द्वारा स्त्रियोंकी काम वृत्तिको जागरित एवम् उत्तेजित कर लें। यदि किसीको इसकी सूझ न हो, तो पशु और पक्षिओंसे उसे यह पाठ सीख लेना चाहिये। निःसन्देह, उन्नत और सभ्य कहानेवाले मनुष्यको पशु और पक्षी इस विषयका पाठ पढ़ा सकते हैं।

घरमें घोंसला बनाकर रहनेवाली गौरैया नामक चिड़ियोंको देखिये। सारा दिन उनकी चहकसे घर गूंजा करता है। यही उनका प्रेमालाप है। बिना भलीभांति प्रेमालाप और मनोरञ्जन किये वे काम प्रवृत्तिमें नहीं पड़तीं। कबूतरोंकी ओर देखिये। नर कबूतर नाचता है, गाता है और अनेक प्रकारसे मादाका मनोरञ्जन करता है। चमकदार सजीली गरदनको मरोड़ मरोड़ कर अनेक प्रकारसे उसे अपना सौन्दर्य प्रदर्शन कराता है। वह स्वयं कामान्ध रहता है, परन्तु मादा जबतक उसपर मुग्ध नहीं

हो जाती, तब तक वह काम प्रवृत्तिमें नहीं पड़ता। मयूरको देखिये। वर्षा ऋतुमें जब यह कामोन्मत्त होता है, तब अपनी पूछको अर्धचन्द्रके आकारमें फैलाकर नाचने लगता है। उस समय उसकी शोभा अपूर्व मालूम होती है मादा उसे देखकर मुग्ध हो जाती है। मयूर अधिकाधिक नृत्य और केकारव कर उसे कामान्ध बना देता है। जब दोनों समानरूपसे मत्त हो जाते हैं, तब काम-कौतुकमें प्रवृत्त होते हैं। पशुओंमें गाय भैंसको देखिये। मादाकी कामवृत्ति पहलेसे ही जागरित रहती है, तथापि नर उसे प्रेमोपचार :द्वारा पहले प्रसन्न करनेकी चेष्टा :करता है। इस प्रकार सभी प्राणियोंमें सहवासके पहले प्रेमोपचार द्वारा प्रेमपात्रीके मनोरञ्जनका नियम विद्यमान है, परन्तु खेदकी बात है, कि मनुष्य-जातिमें यह बात बहुत कम पायी जाती है।

सहवास चाहे आनन्द प्राप्तिके लिये किया जाय, चाहे सन्तानोत्पत्तिके लिये, उस समय स्त्री और पुरुष दोनोंके मनो भाव, दोनोंकी इच्छा, दोनोंकी कामपिपासा एक समान ही होनी चाहिये। इसके लिये पुरुषको भी स्त्रीके निकट आत्मसमर्पण करना होगा। केवल मौखिक बातोंसे काम न चलेगा। हृदय हृदयको पहचान लेता है। यदि पुरुष निष्कपट भावसे स्त्रियोंको आत्मसमर्पण करेंगे, तो स्त्रियां

भी वैसा ही करेंगी। दोनों समान रूपसे प्रसन्न रहेंगे। दोनोंके मनोभाव और प्रवृत्तियां भी समान रहेंगी और इसके फल स्वरूप दोनोंको समान आनन्दकी प्राप्ति होगी। याद रखिये, प्रेममें मरुभूमिको नन्दन काननके रूपमें परिणत कर देनेकी शक्ति है। वह दुःखी जीवनको सुखी बना सकता है। जिन दम्पतियोंमें परस्पर प्रेम नहीं, उनका जीवन ही व्यर्थ है। अतः प्रत्येक मनुष्यको अपना दाम्पत्य-जीवन प्रेममय बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। प्रेम, हृदयके बदले हृदय देनेसे उत्पन्न होता है और किसी उपाय द्वारा नहीं। पुरुष अपने पुरुषत्वके कारण स्त्री पर अत्याचार कर सकता है, परन्तु उसका प्रेम सम्पादन नहीं कर सकता। स्त्रियाँ उसके स्वामित्व और अपने दासी-भावके कारण वह अत्याचार चुपचाप सहन कर सकती हैं, परन्तु आन्तरिक विषादको जलाञ्जली नहीं दे सकतीं। इसलिये, जो लोग अपना दाम्पत्य जीवन सुखमय बनाना चाहते हों, उन्हें स्त्रियोंके निकट निष्कपट भावसे आत्मसमर्पण करना चाहिये और न केवल काम प्रवृत्तिमें ही बल्कि समस्त प्रवृत्तियोंमें उन्हें अपने साथ लेकर चलना चाहिये। यदि इसके लिये वे तैयार न हों, तो यथोचित उपचार द्वारा उन्हें तैयार कर लेना पुरुषोंका प्रथम कर्तव्य है।

८

सहवास किंवा गर्भाधान

विवाह हो जानेके बाद सभी दम्पति सहवास किंवा मैथुन-धर्ममें प्रवृत्त होते हैं। संसारमें आज-कल विलासिता बढ़ती जा रही है, अतः जो सहवास, केवल प्रजोत्पत्तिके लिये प्रयोजनीय था, वह आनन्द-वृद्धिके लिये नित्यका व्यापार हो पड़ा है। मनुष्य मात्रके हृदयमें यह अभिलाषा क्षुधा और तृषाके समान ही प्रबल रूपसे विद्यमान रहती है। साधन-सम्पन्न लोग क्षुधा और तृषाकी निवृत्तिके बाद इसीकी चिन्तामें निमग्न रहते हैं। न केवल मनुष्य, परन्तु पशु पक्षियों तकमें यही बात पायी जाती है। इसके लिये वे प्राणतक उत्सर्ग करनेको तैयार रहते हैं और करते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि ब्रह्मानन्दके बाद विषयानन्द ही एक ऐसा सुख है, जिसकी तुलना और किसी

सुखके साथ नहीं की जा सकती। लोग इसे अनिर्वचनीय सुख कहते हैं सो ठीक ही है। दुःखसे भरे हुए संसारमें इस क्षणिक सुखकी प्राप्तिके लिये प्राणी मात्रका व्याकुल हो उठना स्वाभाविक ही है। परन्तु प्राकृतिक नियमोंपर विचार करनेसे यह बात स्पष्ट रूपसे मालूम हो जाती है, कि केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही सहवासकी योजना की गयी है।

यद्यपि हम लोग कामी मनुष्यको पशु और उसकी अनियमित काम प्रवृत्तिको पशुवृत्तिके नामसे सम्बोधित करते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं। मनुष्यकी अपेक्षा अभी पशु पक्षी प्राकृतिक नियमोंका पालन विशेष रूपसे करते हैं। उनके जीवनमें अभी कृत्रिमता और आडम्बरने प्रवेश भी नहीं कर पाया। वे अब भी नैसर्गिक जीवन व्यतीत करते हैं। उनमें देखा जाता है, कि नियत समय पर ही वे सम्भोग क्रियामें प्रवृत्त होते हैं। कुत्तोंमें ऐसा समय वर्षमें दो बार आता है—एक वसन्त और दूसरा हेमन्तमें। उसी समय उनका यह कार्य सम्पन्न होता है। गाय और भैंस आदि पशुओंमें जबतक पुनः गर्भधारणकी योग्यता नहीं आ जाती, तबतक उनकी विषयेच्छा जागरित ही नहीं होती। उनमें जब संयोग होता है, तब केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये

ही होता है। अन्यान्य पशुओंमें भी प्रायः यही बात पाई जाती है।

परन्तु जो प्राणी सभ्यतामें जितना ही आगे बढ़ता गया है, उतनाही इस नियमकी उपेक्षा करता गया है। अन्य पशुओंकी अपेक्षा बन्दर अधिक सभ्य और चतुर पशु समझा जाता है, यहांतक, कि पाश्चात्य विज्ञान-विशारद मनुष्यकी उत्पत्ति उन्हींसे बताते हैं। इसीलिये उनमें देखा जाता है, कि वे इस विषयमें समय आदिका बन्धन नहीं मानते। मनुष्य उनसे भी अधिक सभ्य होनेका दावा रखता है, अतः वह उनसे भी गयाबीता है। मानव संसारमें यह कर्म अब स्वच्छन्दता पूर्वक किसी भी समय सम्पन्न होता है। इसके लिये समय तथा अन्यान्य बातोंके बन्धन होनेपर भी उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता।

प्राचीन शास्त्रकारोंने केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही सहवास करनेकी आज्ञा दी है, परन्तु ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों लोग उस नियमसे दूर होते जा रहे हैं। बात दरअसल यह है, कि लोग इस कामको अब आनन्द प्राप्तिका एक साधन समझते हैं, इसीलिये जब जब उन्हें अवसर मिलता है, तब तबःवे इसका रसास्वादन करनेमें आगा पीछा नहीं सोचते। फलतः आज चारों

और हाहाकार मचा हुआ है। स्त्रियाँ मशीनकी तरह बच्चे पर बच्चे प्रदान कर रही हैं। उन सबके प्रतिपालन की शक्ति न होनेके कारण घर दारिद्रके अखाड़े हो रहे हैं और स्त्री एवम् पुरुष समुदाय अपना अपना स्वास्थ्य नष्टकर मृत्यु पथकी ओर अग्रसर हो रहा है।

सहवासके समय जो शारीरिक क्रियायें होती है, उनसे भी यही प्रमाणित होता है, कि इस कार्यका आयोजन केवल सन्तानोत्पतिके लिये ही किया गया है। आनन्द प्राप्ति मनुष्यको उस कार्यमें प्रवृत्त करानेके लिये प्रलोभन मात्र है। यदि प्रकृतिने यह प्रलोभन न रक्खा होता, तो लोग इस घृणित और पाप पूर्ण प्रवृत्तिमें क्यों पड़ते? बड़े बड़े त्यागी और तपस्वी इसके लिये क्यों व्याकुल होते? सभी धर्मात्मा और पुण्यात्मा इससे दूर रहनेकी चेष्टा करते। फल यह होता, कि ईश्वरके सृष्टि कार्यमें बड़ी भारी बाधा पड़ जाती। ऐसा न हो, इसीलिये सन्तानोत्पत्तिके मार्गमें आनन्द प्राप्तिका प्रलोभन रक्खा गया है। इसके पीछे स्त्रियां गर्भधारण और प्रसवका कष्ट उठानेको तैयार रहती हैं। पुरुष भी न जाने कितनी कठिनाइयोंका सामना करते हैं, परन्तु इस कार्यसे विमुख नहीं होते। इन सब बातों-पर विचार करनेसे ज्ञात होता है, कि लोग आनन्द पूर्वक

सहवास द्वारा सन्तानोत्पत्ति करें—यही विधिका विधान है। इसीलिये सहवासकी योजना की गयी है।

नव दम्पतियोंको चाहिये, कि इन सब बातोंपर भली भांति विचार करनेके बाद ही वे इस प्रवृत्तिमें पड़ें। सहवास करने पर सन्तानोत्पत्ति होते देर नहीं लगती। केवल एक ही बारके संयोगसे भी सन्तान उत्पन्न हो सकती है। सन्तानका न उत्पन्न होना ही आश्चर्यकी बात है, उत्पन्न होना तो सर्वथा स्वाभाविक ही है। अतः दम्पतियोंको इस प्रवृत्तिमें पड़नेके पहले यह भलीभाँति सोच लेना चाहिये, कि वे यह भार उठानेके लिये तैयार हैं या नहीं। यदि मातामें गर्भधारण और प्रसव-वेदना सहन करनेकी शक्ति न हो, तो उसे भूल कर भी इस क्षणिक आनन्दके प्रलोभनमें न पड़ना चाहिये। यदि पितामें भावी सन्तानके प्रतिपालन की शक्ति न हो, उसे पढ़ालिखा कर योग्य बनानेका सामर्थ्य न हो, तो उसे भी इस विपत्तिको निमन्त्रण न देना चाहिये। जिनमें यह सब सहने और करनेकी शक्ति हो, वे आनन्दपूर्वक इस कार्यमें प्रवृत्त हो सकते हैं।

सन्तानोत्पत्ति ही सहवासका एकमात्र उद्देश है, अतः सहवासके समय कौन कौनसी शारीरिक घटनायें घटती

हैं और उनके द्वारा सन्तानोत्पत्तिका कार्य किस प्रकार सम्पादित होता है, यह सब दम्पतियोंके लिये जान रखना परमावश्यक है। इससे न केवल उन्हें अपना कर्तव्य ही स्थिर करनेमें सहायता मिलेगी, वल्कि जरा जरासी भूलके कारण कभी कभी जो महान कष्ट भोगने पड़ते हैं, उनसे भी वे त्राण पा सकेंगे। यद्यपि यह विषय चिकित्सा शास्त्रके अन्तर्गत है और इसकी बारीकियां प्रत्येक मनुष्यकी समझमें भी नहीं आ सकतीं, तथापि उन मोटी मोटी बातोंका उल्लेख कर देना हम उचित समझते हैं, जिनका ज्ञान प्राप्त करना सबके लिये परमावश्यक है।

यह तो सभी लोग जानते हैं, कि पुरुषोंके शरीरका सारभूत पदार्थ वीर्य और स्त्रियोंके शरीरका रज कहलाता है। स्त्रियोंके गुह्यांगमें वाह्य मुखसे पांच छ अंगुलकी दूरीपर अमरूदके आकारका गर्भाशय होता है। गर्भाशय की दोनों ओर एक एक अंडाशय किंवा डिम्बकोष होता है। उसका आकार बदामके समान होता है। जब स्त्रियां ऋतुमती होती हैं, तब कुछ डिम्ब किंवा अंडे अंडाशयसे निकल कर गर्भाशयमें आ जाते हैं। यह डिम्ब सजीव होते हैं। इन्हींके साथ पुरुषके वीर्यका संयोग होनेपर गर्भ स्थिति होती है।

जिसप्रकार दूधमें घी मिला रहता है, उसी तरह शरीरके रक्तमें वीर्य मिला रहता है। जब पुरुष काम प्रवृत्तिमें प्रवृत्त होते हैं, तब जैसे दूधको मथनेसे मक्खन निकलता है, उसी तरह वीर्य प्रस्तुत होता है। यह काम अंडकोष तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ियाँ और यन्त्रोंद्वारा सम्पन्न होता है। स्त्रियोंके डिम्बकी भांति पुरुषोंके वीर्यमें भी सजीव पदार्थ होता है। उसे शुक्राणु किंवा शुक्रकीट कहते हैं। इन्हीं शुक्र कीट और डिम्बोंके संयोगसे गर्भस्थिति होती है।

जो लोग सदाचारी और संयमी होते हैं, उनके शुक्र कीट निरोग और हृष्टपुष्ट होते हैं, किन्तु जो दुराचारी और रोगी होते हैं, उनके शुक्र कीट निस्तेज और दुर्बल होते हैं। गर्भ सञ्चार करनेकी शक्ति निरोग और हृष्टपुष्ट शुक्रकीटोंमें ही होती है। दुर्बल शुक्रकीटों द्वारा गर्भ सञ्चार होनेपर सन्तान भी दुर्बल ही होती हैं। प्रमेह, उपदंश और अंडकोष सम्बन्धी व्याधियां तथा हस्तमैथुन प्रभृति दुर्व्यसनोंके कारण कभी कभी इन शुक्रकीटोंका सर्वथा अभाव भी हो जाता है। उस दशामें फिर गर्भस्थिति नहीं होती।

यहां पर हमारे पाठकोंको रज और वीर्य—इन दोनोंका अन्तर भलीभांति समझ लेना चाहिये। स्त्रियोंके डिम्ब

और रजकी तरह पुरुषोंके कीट और वीर्य पृथक पृथक नहीं होते। पुरुषके वीर्यहीमें गर्भ संचार करनेवाला सजीव पदार्थ मिला रहता है। परन्तु स्त्रियोंके यह दोनों पदार्थ भिन्न भिन्न होते हैं। उनके रजमें सजीव पदार्थ न होनेके कारण उससे वीर्यका संयोग होने पर भी गर्भ-संचार नहीं होता। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि स्त्रियोंके ऋतुमती होने पर डिम्बकोषसे जो डिम्ब गर्भाशयमें आते हैं, वे कुछ ही दिनतक वहां जीवित रहते हैं। यदि उसी समय पुरुष सहवास करता है और डिम्ब तथा शुक्रकीटोंका मेल हो जाता है, तो गर्भस्थिति अवश्य हो जाती है। अन्यथा सहवास करने पर भी गर्भसंचार नहीं होता।

नवदम्पतियोंको चाहिये, कि इन सब बातोंको भलीभाँति समझ लें और यदि सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा हो, तो केवल उसी समय और उसी दशामें सहवास करें, जब गर्भसंचार होनेकी सम्भावना हो। जो लोग इन बातोंका विचार न कर, अनियमित रूपसे स्वच्छन्दता पूर्वक विहार करते हैं, वे असमयमें ही अपना यौवन और स्वास्थ्य खो बैठते हैं। उनका घर दुर्बल और अल्पजीवी सन्तानोंसे भर जाता है और नाना प्रकारके कष्टोंके कारण उन्हें अपना जीवन भार मालूम होने लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं,

कि पशुओंसे भी गयेबीते मनुष्य यदि पहलेसे ही इन सब बातों पर विचार करें और अनियमित संयोग द्वारा होनेवाली हानियोंको समझ लें, तो वे क्षणिक आनन्दको निस्पृहताकी दृष्टिसे देख सकते हैं। परन्तु यह तभी सम्भव है, जब वे इन बातों पर भली-भांति विचार करें और इस विषयके रहस्योंको हृदयङ्गम कर नियमानुसार आचरण करनेका निश्चय करें। इस बातके लिये उन्हें बड़ा भारी त्याग करना होगा—अपनी विलास-प्रियताको जलाञ्जलि देनी होगी और तदर्थ अपने मनको सुदृढ़ एवम् उन्नत बनाना होगा। इससे कोई यह न समझे, कि सहवास कोई निन्द्य काम है और उसका नाम लेना भी पाप है। यह तो एक परम पवित्र कर्त्तव्य है। इसकी गार्हस्थ्य-धर्ममें गणना की गयी है, परन्तु आजकल जिस रूपमें सम्पन्न होता है उस रूपमें नहीं। उसमें और इसमें बड़ा अन्तर है। दम्पतियोंके हृदयमें यदि सन्तानोत्पत्तिकी पवित्र वासना छिपी हो तो उनका सहवास पुण्य है और पाशविक दुर्वासना हो तो पाप है। गार्हस्थ्य-धर्म केवल अपनी ही स्त्रीके साथ, ऋतुकालमें, निश्चित तिथि और निर्धारित समय पर ही यह काम करनेकी सम्मति प्रदान करता है। अगले अध्यायोंमें हम इन्हीं सब बातोंपर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

६

सहवास करनेवालोंकी अवस्था
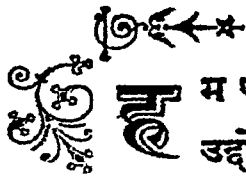
हम पहले ही कह चुके, कि सहवासका एकमात्र उद्देश्य है सन्तानोत्पत्ति, परन्तु सम्प्रति लोगोंने इस बातको भुला दिया है। अब इसका प्रधान उद्देश्य आनन्द प्राप्ति ही समझा जाता है। वैसा करते करते अनायास ही किसी दिन गर्भ स्थिति हो जाती है और आनन्दमें बाधा पड़ जाती है। जो लोग कुछ समझदार होते हैं, वे कुछ समयके लिये आत्मसंयम करते हैं और जिन्हें अपने या अपनी स्त्रीके स्वास्थ्यकी परवाह नहीं होती, वे अन्ततक इस कर्मसे विमुख नहीं होते। यथासमय स्त्रियाँ बच्चोंको जन्म देती हैं और ज़न्म देनेके बाद कुछ ही दिनोंमें पुनः वही क्रम चलने लगता है। इस प्रकार लोगोंको अनायास ही सन्तानोंकी प्राप्ति होती है। वे

इसके लिये विशेष रूपसे कोई चेष्टा नहीं करते, बल्कि गर्भ स्थितिको अपने आनन्दमें बाधा स्वरूप समझ, उन्हें कुछ खेद और दुःख होता है।

इस प्रकार जिन्होंने सहवासको एक प्रकारका विलास और स्त्रीको विलासकी सामग्री समझ रक्खी है, वे किसी बातका विचार ही नहीं करते। न उन्हें ऋतुकालसे मतलब, न समय कुसमयका विचार। जिस समय हृदयमें तरंग उठे, वही उनके लिये ऋतुकाल है। बल्कि उनका उद्देश्य उलटा रहता है, अतः वे ऋतुकालमें सहवास करनेसे डरते हैं, कि कहीं गर्भ न रह जाय और आनन्दमें बाधा न पड़ जाय। परन्तु सन्तानोत्पत्ति ही सहवासका प्रधान उद्देश्य है, इसलिये ऋतुकाल, समय असमय और अवस्थादि बातों पर भली भाँति विचार करना चाहिये। इन बातों पर ध्यान न रखनेसे न केवल हीन और अल्पजीवी सन्तान ही उत्पन्न होती है, बल्कि दम्पतियोंका स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता है। स्वास्थ्य नष्ट हो जाने पर जो लोग केवल आनन्द प्राप्ति ही के लिये सहवास करते हैं, उन्हें आनन्द भी कैसे प्राप्त हो सकता है। इसीलिये यह बातें सब लोगोंके लिये एक समान उपयोगी हैं और सबको इनका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

वैद्यक शास्त्रके महान् आचार्य सुश्रुत मुनिका कथन है, कि २५ वर्षका पुरुष सोलह वर्षकी स्त्रीके साथ मैथुन कर सकता है। उस समय दोनों पूर्ण यौवन प्राप्त करते हैं। दोनोंका वीर्य परिपक्व हो जाता है। दोनोंके अंग परिपुष्ट एवम् दृढ़ हो जाते हैं। दोनोंका बल और वीर्य एक समान होता है, अतः हृष्टपुष्ट और बलिष्ट सन्तान उत्पन्न होती है। सोलह वर्षसे कम अवस्थाकी स्त्रीके साथ यदि पच्चीस वर्षसे कम अवस्थाका पुरुष सहवास करता है, तो बच्चे गर्भहीमें मर जाते हैं। यदि ऐसा न हुआ और किसी प्रकार उन्होंने जन्म ग्रहण किया, तो वे दीर्घजीवी नहीं होते और आजीवन रोगी बने रहते हैं। इसलिये छोटी अवस्थाकी स्त्रीके साथ भूल कर भी सहवास न करना चाहिये।*

दुर्भाग्यवश हमारे भारतवर्षमें बाल विवाहकी प्रथा प्रचलित है। किसी किसी जातिमें तो जन्म होते ही

---

* पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वा गत वीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषग्॥
ऊन षोडश वर्षायाम प्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं गर्भस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरंजीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

बच्चोंका विवाह कर दिया जाता हैं। केवल संयुक्त प्रान्तकी ही जनसंख्याका ब्यौरा देखनेसे पता चलता है, कि सन १९२१ में वहाँ २०१३०८१४ हिन्दुओंमें ११७८७ पुरुष ऐसे थे, जिनकी अवस्था पाँच वर्षसे अधिक नहीं थी, परन्तु वे विवाह बन्धनमें बाँध दिये गये थे। इसी भाँति १८२७४८१० स्त्रियोंमेंसे पांच वर्षकी आयु तककी १६,३५५ स्त्रियाँ विवाहिता थीं। यही क्यों, इन अभागोंमें ५२० पुरुष और ४३४ स्त्रियाँ ऐसी थीं, जिनके पापी माता पिता एक वर्षकी आयु होनेके पहले ही विवाह संस्कारकी आड़में अपने उन भोले भाले बच्चोंके जीवनकी हत्या कर चुके थे। यह केवल संयुक्त प्रांतका हाल है। सन १९२१ की मनुष्य गणना के अनुसार समस्त भारतके विवाहित स्त्री पुरुषोंकी संख्या इस प्रकार है :—

आयुवर्ष	पुरुष	स्त्रियां
१ से कम	६९२१	९०६६
१ से २	३६८७	११५९५
२ से ३	१६४८४	३२१९७
३ से ४	२८९१५	६०७५५
४ से ५	५१६७३	१८४८५०
५ से १०	७५७४०५	२०१६६८७

आयुवर्ष	पुरुष	स्त्रियां
१० से १५	२३४४०६६	६३३०२०७
१५ से २०	४०७७४००	९६३५३४०
२० से २५	७३८६९९७	११८४०९२०
२५ से ३०	१०५५४२८०	११७१७९६४
३० से ३५	११०४९३२९	१०१६७७२१
३५ से ४०	८७२९६३६	६३०१२४६
४० से ४५	८३०९३५०	५६९९१६०
४५ से ५०	५१५३३३८३	२७७९७५९
५० से ५५	५३९४६५३	२९८१४५५
५५ से ६०	२२२४१७५	९०८६५९
६० से ६५	२९५३४६०	८८३०२६
६५ से ७०	८४५३६९	२५१५४६
७० से अधिक	१४६७५६७	३५०६७८

इन अंकोको देखनेसे ज्ञात होता है, कि भारतमें पच्चीस वर्षसे कम अवस्थाके लाखों पुरुष और सोलह वर्षसे कम अवस्थाकी लाखों स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो विवाहके बन्धनमें जकड़ी जा चुकी हैं। यद्यपि यह ठीक है, कि विवाह होनेके साथ ही सब लोग सहवास नहीं करने लगते। हम मानते हैं, कि द्विरागमन आदि बहुत सी ऐसी प्रथायें

प्रचलित हैं, जो नव दम्पतियोंके सम्मिलनमें बाधा देती हैं, तथापि यह निर्विवाद है, कि विवाह होनेपर सबके लिये सहवासका मार्ग प्रशस्त हो जाता है। उस दशामें यदि कोई सहवास करता है, तो उसे लोग बुरा नहीं कहते। बच्चोंका विवाह कर देना उन्हे सहवासके लिये आज्ञा दे देनेके समान है। एकबार आज्ञा दे देनेपर फिर क्या इस बातकी आशा रक्खी जा सकती है, कि वे इस प्रवृत्तिमें न पड़ेंगे? बहुत छोटी अवस्था वाले दम्पतियोंके सम्बन्धमें हम कोई बात नहीं कह सकते, परन्तु बारहसे लेकर पन्द्रह वर्ष तककी विवाहिता स्त्रियाँ और पन्द्रहसे लेकर बीस बाईस वर्ष तकके विवाहित पुरुषोंके सम्बन्धमें यह कौन कह सकता है, कि वे इन्द्रिय-निग्रह करते होंगे?

उपरोक्त अंकोंसे पता चलता है, कि सन् १९२१में यहां दससे पन्द्रह वर्ष तककी ६३३०२०७ स्त्रियां विवाहिता थीं। सम्भव है, कि इनमेंसे दससे लेकर बारह वर्षतककी स्त्रियां, छोटी अवस्थाके कारण सहवास न करती हों। शेषके सम्बन्धमें पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकते हैं। वैद्यक शास्त्र इस अवस्थामें स्त्रियोंको गर्भ धारणके लिये अयोग्य बतलाता है, परन्तु हमारे देशका पुरुष-समुदाय ऐसा संयमी नहीं है, कि विवाह हो जानेके बाद भी स्त्रियोंसे

छेड़ न करे। मिसिस ई० बी डफीके मतानुसार शायद पचास पुरुषोंमें एक भी ऐसा पुरुष न मिलेगा, जो अपने विवाहके प्रथम वर्षमें अत्यंत स्त्री-सहवास न करता हो। हमलोग रात दिन यही देखते भी हैं। सर्वत्र यही होता है। सब लोग ऐसा ही करते हैं। क्या स्त्री और क्या पुरुष कोई भी अपनी अवस्थाका विचार नहीं करता। ऐसी दशामें स्वास्थ्यकी हानि, अल्पायु रोगी और दुर्बल सन्तानोंकी वृद्धि, और उनके प्रतिपालनकी चिन्ताके अतिरिक्त और कोई सुफल मिल ही कैसे सकता है?

हमलोग अपने अनुभवसे भी इन बातोंपर विचार कर सकते हैं। यह बड़े ही दुःखकी बात है, कि विवाह होनेके बाद शीघ्र ही भारतीय 'ललनायें' माताके रूपमें परिणत हो जाती हैं और जिस अवस्थामें उन्हे गर्भधारण करना चाहिये उसके पहले ही दो चार बच्चे उनकी गोदमें आ पड़ते हैं। सन्तानोंकी असमयमें ही आनेवाली इस बाढ़के कारण न देशका ही उपकार होता हैं, न माता पिताओंका ही श्रेय होता है। ऐसे बच्चे बहुधा जन्मते ही मर जाते हैं और यदि जीवित रहते हैं, तो आजीवन रोगी बने रहते हैं। बालकोंकी मृत्यु-संख्या दिन पर दिन जो भयंकर रूप धारण करती जा रही है, उसका यही एकमात्र कारण है। सन्

१९२१ की गणनानुसार बंगालमें उसी साल १३,०१,००१ बच्चे उत्पन्न हुए थे, जिनमेंसे २,६८१६२ जन्मते ही मृत्यु मुखमें प्रवेश :कर गये। यही दशा समस्त भारत की है। भारतवासियोंका बड़े ही भयंकर रूपसे ह्रास हो रहा है और बड़ी शीघ्रताके साथ वे विनाशकी ओर अग्रसर हो रहे हैं।

एक तो परम्परागत दुर्बलता, दूसरे ब्रह्मचर्यका अभाव और तिसपर छोटी अवस्थामें विवाह! ऐसी दशामें बच्चों-की मृत्यु अवश्यम्भावी है। इन्हीं सब कारणोंसे बाल विधवाओंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। किस अवस्थामें विवाह और किस अवस्थामें सहवास करना उचित है—इस विषयका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर, लोग तदनु-सार आचरण करें तो दीर्घायुषी सन्तान लाभ कर सकते हैं। यदि वह सन्तान भी इसी तरह करे, तो उसकी सन्तान भी दीर्घायुषी हो सकती हैं और इसी क्रम द्वारा भारतवासी पुनः दीर्घजीवन लाभ कर सकते हैं।

भली भांति विचार करनेपर मालूम होता है, कि दाम्पत्य विज्ञानको न जाननेके कारण ही लोग दिन प्रतिदिन अल्प-जीवी होते चले जा रहे हैं। यदि वे इन बातोंको समझने लगें तो भूल कर भी ऐसा काम न करें, जिसके कारण दो दांतकी स्त्रियोंको कलपते छोड़कर उन्हें अकालमें ही मृत्यु

सुखमें प्रवेश करना पड़ता है। देखिये, इस अज्ञानताके कारण कितनी अबलाओंको वैधव्य-जीवन व्यतीत करना पड़ता हैं। सन १९११ को मनुष्य गणनानुसार समस्त भारतकी बाल विधवाओंके अंक नीचे दिये जाते हैं :—

आयुवर्ष	विवाहिता	विधवा
१ से कम	१३२१२	१०१४
१ से २	१७७५३	८५६
२ से ३	४९७८७	१८०७
३ से ४	८७५०८	४७५३
४ से ५	१३४१०५	६२७३
५ से १०	२२१६७७८	६४२७०
१० से १५	६५५५४२४	२२३०४२

बतलाइये, पन्द्रह वर्षकी आयु! युवावस्था! निराशामय भविष्य! पापी संसार! क्या परिणाम होग? जिस देशके वक्षस्थल पर सहस्राधिक बालिकायें वैधव्य भोग रही हों और जिन्हें यह पता न हो, कि कब विवाह हुआ और कब उनका भाग्य फूट गया, उस देशकी जितनी दुर्दशा हो उतनी ही कम है। आज्ञानावस्थामें विवाहके नाम पर जो कुछ हो गया, उसी अपराधके कारण उन निरपराध बालिकाओंको संसारके समस्त सुखोंसे वञ्चित रहकर—हमारे भाग्यमें

वैधव्य ही बदा था—बस यही कहते हुए अपना जीवन बिताना पड़ेगा। निःसन्देह आज हिन्दू समाज इन्हीं बाल विधवाओंके उष्ण उच्छ्‌वाससे दग्ध हुआ जा रहा है!

भारतवासियोंकी आयु भी दिन प्रतिदिन घटती जा रही है। न्युज़ीलैण्डकी ६०, आस्ट्रेलियाकी ५५ अमेरिका और इङ्गलैण्डकी ४६, जर्मनीकी ४५ और जापानियोंकी औसत आयु जहां ४३ वर्षकी है, वहां एक भारतवासीकी आयु २२ ही वर्षकी निकलती है। सन् १९०१ में जहां वह २४ वर्षकी थी वहां सन् १९११ में २३ और १९२१ में २२ ही वर्षकी रह गयी है। जीवनीशक्तिके इस ह्रासका कारण भी ब्रह्मचर्य-का अभाव, बालविवाह और असमयका सहवास ही है।

इन सब बातोंका तात्पर्य यह है, कि १६ वर्षसे कम आयुकी स्त्री और २५ वर्षसे कम आयुवाले पुरुषको कदापि सहवास न करना चाहिये। हमारा धर्मशास्त्र और विज्ञान इसके लिये जरा भी सम्मति प्रदान नहीं करता। आधुनिक विद्वानोंकी भी यही राय है। अतः जिन्हें सुन्दर, सुशील और दीर्घायुषी सन्तान उत्पन्न करनी हो, जो अपना स्वास्थ्य और यौवन चिरकाल तक स्थिर रखना चाहते हों, उन्हें काम-प्रवृत्तिमें पड़नेके पहले अपनी अवस्थाका विचार अवश्य कर लेना चाहिये।

———

१०

ऋतुकाल

गत अध्यायमें हम बतला चुके, कि स्त्री समागमका एकमात्र उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति ही है और होना चाहिये, किन्तु आनन्द प्राप्ति ही उसका इस समय प्रधान उद्देश्य हो रहा है। सन्तानोत्पत्तिके लिये जो सहवास किया जाता है, उसे शास्त्रकारोंने धर्म और कर्त्तव्य कर्म बतलाया है और जो केवल मनोरञ्जनके लिये किया जाता है, उसे निन्द्य और पापरूप बतलाया है। वह निन्द्य इसलिये है, कि उससे क्षणिक सुखकी प्राप्तिके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता। वैज्ञानिकोंका कथन है, कि भुक्त अन्नका एक मासमें वीर्य तैयार होता है और एक बिन्दु वीर्य चालीस बिन्दु रक्तके बराबर होता है। जो लोग सन्तानोत्पत्तिके लिये सहवास करते हैं, उन्हें तो वीर्यपात जनित हानिका एक प्रकारसे

बदला मिल जाता है, परन्तु जो लोग क्षणिक सुखके लिये यह कार्य करते हैं, वे सोलहो आने घाटेमें रहते हैं। उन्हें न केवल वीर्यहीकी हानि उठानी पड़ती है, बल्कि स्वास्थ्य और यौवनसे भी सदाके लिये हाथ धोने पड़ते हैं। इस-लिये चतुर पुरुषोंको सन्तानोत्पत्ति भिन्न किसी दूसरे उद्दे-श्यसे भूल कर भी स्त्री-संग न करना चाहिये।

स्त्रियां तीसोदिन गर्भ धारण नहीं कर सकतीं। हिन्दू वैज्ञानिकोंके मतानुसार ऋतुमती होनेके बाद केवल सोलह ही दिनतक उनका गर्भद्वार खुला रहता है। इसके बाद वह बन्द हो जाता है। पाश्चात्य विद्वान इस बातको नहीं मानते। वे अनेक उदाहरणों द्वारा यह बात प्रमाणित करते हैं, कि ऋतुमती होनेके बीस या बाइस दिन बाद भी स्त्रियां गर्भवती हो सकती हैं। उनका कथन है, कि स्त्रियोंके ऋतुमती होनेपर वे डिम्ब किंवा बीज, जिनके साथ पुरुषके वीर्यका संयोग होनेपर गर्भ संचार होता है, अपने स्थानसे निर्गत हो जरायुमें आते हैं, और वे वहां जब तक जीवित रहते हैं, तब तक गर्भ सञ्चार हो सकता है। हम उनके इस कथनको स्वीकार करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि जबतक डिम्ब जीवित रहते हैं, तभी तक गर्भ सञ्चार होता है, परन्तु

डिम्ब कबतक जीवित रहते हैं, इस बातका ठीक ठीक पता अबतक कोई नहीं लगा सका। अधिकांश विद्वानोंका मत है, कि यह डिम्ब बहुधा आठ दश दिन तक ही जीवित रहते हैं। यहाँ प्राच्य और पाश्चात्य सिद्धान्तोंका एक तरहसे मेल हो जाता है। हम अपने ही शास्त्रोंकी बातको प्राधान्य दे, मान ले सकते हैं, कि स्त्रियाँ रजोदर्शनके दिनसे सोलह दिन तक ही गर्भ धारण कर सकती हैं। इसी सोलह दिनके समयको हमने ऋतुकाल कहा है। इसके बाद यदि स्त्रियाँ गर्भ धारण कर सकती हैं, तो वह केवल अपवाद हैं, सर्वमान्य नियम नहीं।

ऋतुकाल पर सब लोगोंको समान रूपसे ध्यान देना चाहिये। जो लोग सन्तानोत्पत्तिके लिये सहवास करें, उन्हें इस बातको समझ लेना चाहिये, कि किस दिन सहवास करनेसे कैसी सन्तान उत्पन्न होती है और जो लोग आनन्द प्राप्तिके लिये सहवास करें, उन्हें यह इसलिये जान लेना चाहिये, जिससे गर्भ सञ्चार न हो, और यदि हो तो किसी अच्छे दिन हो, जिससे हीन सन्तान न उत्पन्न हो। ऋतुकालके सम्बन्धमें मनु भगवानने लिखा है कि :—

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोड़श स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्भि गर्हितैः॥

तासामाद्याश्च तस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम्॥
पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समेऽपुमान्पुं स्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्य्ययः॥

अर्थात्, पहली चार दिवा रात्रियां लेकर स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ रात्रियाँ हैं। इनमें पहली चार रात्रियाँ व एकादश और त्रयोदश रात्रियाँ—यह छः निषिद्ध हैं। शेष दस रात्रियाँ स्त्री-गमनके लिये प्रशस्त हैं। इन दसमेंसे छठी, आठवीं, दसवीं आदि युग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे पुत्र होता है और पाँचवीं, सातवीं, नवीं आदि अयुग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे कन्या होती है, इसलिये पुत्रके लिये ऋतुकालकी युग्म रात्रियोंमें ही गमनका विधान किया गया है। अयुग्म रात्रि होने पर भी पुरुषका वीर्य अधिक होने पर पुत्र होता है और युग्म रात्रि होने पर भी रजके आधिक्यसे कन्या उत्पन्न होती है। यदि कहीं दोनों एक समान होते हैं, तो या तो नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है या यमज कन्या पुत्र (जोड़ बच्चे) उत्पन्न होते हैं। और यदि रज और वीर्य दोनोंकी

कमी हुई या दोनों निस्तेज हुए तो गर्भ सञ्चार ही नहीं होता।

ऋतुमती किंवा रजस्वला स्त्रीके साथ, रजोदर्शनके प्रथम तीन दिन सहवास करना मना है। इन दिनोंमें सहवास करने पर बहुधा स्त्रियोंको गर्भ नहीं रहता, क्योंकि पुरुषका वीर्य ठिकाने पर न पहुँच कर रक्तस्रावके साथ बाहर निकल जाता है और यदि गर्भ रह जाता है, तो हीन सन्तान उत्पन्न होती है। इन दिनोंमें कोई उनका संग न करे इसलिये शास्त्रकारोंने उन्हें चाण्डाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी तुल्या अशुद्धा बतलाया है।* चौथे दिन स्त्री शुद्ध होती है। उस दिन सहवास किया जा सकता है, परन्तु शास्त्रकारोंने उस दिनको भी अच्छा नहीं बतलाया। पाँचवें दिनसे सोलहवें दिनतक सानन्द यह काय किया जा सकता है। चौथे तथा छठे दिनके पुत्र तथा पाँचवें

---

* प्रथमेऽनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति॥

अर्थात् रजोदर्शनके प्रथम दिवस स्त्री चाण्डाली तुल्या, द्वितीय दिवस ब्रह्मघातिनी तुल्या, और तृतीय दिवस रजकी तुल्या अशुद्धा रहती है। चौथे दिन शुद्ध होती है।

—पराशर संहिता।

और सातवें दिनकी कन्यायें भली नहीं होती, अतः इन तिथियोंमें भी यथा-सम्भव आत्मसंयमसे काम लेना चाहिये। किस रात्रिमें सहवाससे कैसी सन्तान उत्पन्न होती है, यह जाननेके लिये निम्नलिखित विवरण पढ़िये।

पहले तीन दिन—रजो दर्शनके समय तीन दिनतक स्त्री पुरुषोंको भूल कर भी सहवास न करना चाहिये। इससे पुरुषकी जीवनी शक्ति और स्वास्थ्य नष्ट होता है और स्त्रीके शूल आदि बीमारियाँ हो जाती हैं। यदि सहवास किया जाता है, तो बहुधा गर्भ ही नहीं रहता और यदि रहता तो पहले और दूसरे दिनके सहवाससे उत्पन्न होनेवाली सन्तान गर्भ किंवा बचपनमें ही मर जाती है तथा तीसरे दिनके सहवाससे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह आजन्म रोगी बनी रहती है। इसलिये बुद्धिमान दम्पतियोंक रजोदर्शनके समय एक दूसरेको स्पर्श भी न करना चाहिये।

चौथा दिन—सहवास किया जा सकता है, परन्तु शास्त्रकारोंने इसे भी निषिद्ध कहा है। इसका कारण यह है, कि बहुतेरी स्त्रियोंका रक्तस्राव इस दिन तक सम्पूर्ण रूपसे बन्द नहीं होता। इस दिन सहवास करने पर बहुधा एकसे अधिक बच्चे एक साथ उत्पन्न होते हैं और जो उत्पन्न होते हैं वे आजन्म दरिद्री बने रहते हैं।

पाँचवाँ दिन—कुलटा कन्या उत्पन्न होती है।

छठाँ दिन—भिक्षुक और दरिद्री पुत्र उत्पन्न होता है।

सातवाँ दिन—बहुधा कोई सन्तान नहीं उत्पन्न होती और यदि होती है, तो कुल कलंकिनी कन्या उत्पन्न होती है।

आठवाँ दिन—भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होता है।

नवाँ दिन—शुभाचरणवाली कन्या उत्पन्न होती है।

दशवाँ दिन—श्रेष्ठ और शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न होता है।

ग्यारहवाँ दिन—साधारण कन्या उत्पन्न होती है।

बारहवाँ दिन—जितेन्द्रिय पुत्र उत्पन्न होता है।

तेरहवाँ दिन—साधारण पुत्र किंवा पुत्री उत्पन्न होती है।

चौदहवाँ दिन—भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होता है।

पन्द्रहवाँ दिन—धर्माचारिणी कन्या उत्पन्न होती है।

सोलहवाँ दिन—महा बलवान पुत्र उत्पन्न होता है।

उत्तम सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको इनके अतिरिक्त कतिपय और नियमों पर भी ध्यान रखना चाहिये। पूर्णिमा, अमावास्या, चतुर्द्दशी, अष्टमी और संक्रान्तिको पर्वदिन कहते हैं, अतः इन दिनोंमें भी सहवास करना मना है। रविवारका दिन भी निषिद्ध है। जिस दिन कहीं जाना हो उस दिन भी स्त्री-समागम न करना चाहिये। मघा और मूल नक्षत्रमें सहवास करनेवालोंकी आयु क्षीण

होती है। ज्येष्ठा, अश्लेषा, रेवती, कृत्तिका, अश्विनी और तीनों उत्तरा नक्षत्र भी निन्दित हैं। अमावास्याके दिन स्त्रियोंके शरीरमें रसकी विशेषता रहती है, अतः उस दिन सहवास करनेसे न केवल पुरुषका वीर्य ही नष्ट होता है, बल्कि गर्भ-सञ्चार होता है, तो दुर्बल, रोगी और अल्पायु सन्तानका जन्म होता है।

हमारे पाठकोंको यह सब पढ़ कर बड़ा आश्चर्य होगा। रजोदर्शनके दिनसे केवल सोलह दिनतक गर्भसञ्चार होनेका समय, जिसमें पहले सात दिन सन्तानकी दृष्टिसे खराब होते हैं, अतः उनको घटा देने पर शेष बचे ९ दिन। उसमें भी ग्यारहवाँ और तेरहवाँ दिन निषिद्ध होनेके कारण निकाल देने पर केवल सात ही दिन बचते हैं। इन सात दिनोंमें रविवार, अष्टमी, एकादशी, अमावास्या आदि तिथि-वार और पर्वदिन तथा मघा मूल आदि नक्षत्र बाद कर देने पर शायद ही दो एक दिन बचें। सन्तानोत्पत्तिके लिये क्या इतना समय पर्याप्त है?

इस प्रश्नके उत्तरमें कहा जा सकता है, कि वीर्यवान पुरुषके लिये यह दो ही एक दिनका समय यथेष्ट है। इतने ही समयमें वह मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकता है। प्राचीन कालमें यहाँ यही होता था। इसीलिये यहाँ घर

घरमें शूरवीर, प्रतापी, बुद्धिमान, श्रीसम्पन्न और दीर्घायुषी बालकोंका जन्म होता था। आज हम इन बातोंको भूल गये हैं, दाम्पत्य धर्मको जलाञ्जलि दे चुके हैं, इसीलिये हमारी दुर्गति हो रही है। यदि हम इन नियमोंसे दूर न जा पड़े होते और इन अनुभव सिद्ध सिद्धान्तोंकी अवहेलना न करते होते, तो हम और हमारी सन्तान उत्तरोत्तर हीनावस्थाको प्राप्त न होती, भारतका शिर नीचा न होता। परन्तु सर्वनाश हो जाने पर अब हमारी आँखें खुली हैं। पंख कट जानेके बाद उड़नेकी इच्छा हो रही है। इस उद्देश्यकी सिद्धि असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य हैं; परन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है, कि हम अगर इन बातोंको समझेंगे, इन पर विचार करेंगे और तदनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करेंगे, तो हम भले ही न सुधरें, परन्तु हमारी सन्तान अवश्य सुधर जायगी। इतना ही बहुत है। इसीसे भारतका मुख उज्ज्वल हो सकता है।

बहुत लोग इन बातों पर विश्वास नहीं करते। उन्हें तिथि, पर्वणी और नक्षत्रोंका झमेला अच्छा नहीं लगता। वे कहते हैं, कि यह सब व्यर्थका झगड़ा है। अंग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे हमारी रुचि ऐसी ही हो गई है। अपने शास्त्रोंकी बातों पर हमें तब तक विश्वास नहीं होता, जब

तक उन्हें युरोपीय विद्वान सत्य नहीं प्रमाणित करते अथवा जबतक उन पर पाश्चात्य विज्ञानकी मुहर नहीं लगती। वास्तवमें यह बड़ी बुरी बात है। हमें यह भली भाँति समझ लेना चाहिये, कि पाश्चात्य विज्ञान बहुत आगे बढ़ जाने पर भी, कई बातोंमें अभी भारतके विज्ञानसे पिछड़ा हुआ है। दाम्पत्य-विज्ञानके विषयमें भी यही बात है। इस सम्बन्धमें हम एक उदाहरण भी दे देना चाहते हैं। महामुनि अगस्त्यकी इच्छा थी, कि किसी सर्वगुण-सम्पन्न-विदुषी और सुशोला सुन्दरीके साथ विवाह करें। वे कन्याकी खोज करने लगे, परन्तु उन्हें कहीं भी जैसी चाहते थे वैसी सुन्दर कन्या न मिली। निदान उन्होंने एक राजमहिषीके गर्भमें परम प्रतापी और सर्वगुण सम्पन्न पुत्रको देखा। उन्होंने सोचा, कि यदि यह गर्भस्थ बालक कन्याके रूपमें परिणत हो जाय, तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो सकता है। यह विचार आते ही उन्होंने उस गर्भस्थ बालकको कन्या बना दिया। उसकी पुरुषोचित मुद्रा लोप हो गयी, इसीलिये उसका नाम लोपामुद्रा पड़ा। अगस्त्यने यथासमय उसीके साथ परिणय कर अपना दाम्पत्य-जीवन व्यतीत किया।

अगस्त्यके पिता भी इस विज्ञानके महान ज्ञाता थे।

उन्होंने अपने वीर्यको एक घड़ेमें रख दिया था और उसीसे यथासमय अगस्त्यका जन्म हुआ था। इसीलिये उनका नाम कुम्भज पड़ा था। हमारे उपरोक्त कोटिके बन्धुगण इन बातोंको भी कपोल कल्पित बतला सकते हैं, परन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है, कि जो लोग गर्भस्थ बच्चेको—वह लड़का है कि लड़की-पहचान सकते थे, उसके गुणागुणकी परीक्षा कर सकते थे, उसकी मुद्रा बदलनेका सामर्थ्य रखते थे और घड़ेसे गर्भाशयका काम ले सकते थे, वे इस विज्ञानमें आधुनिक वैज्ञानिकोंसे कहीं अधिक चढ़े बढ़े थे और अधिक योग्यता रखते थे। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने कृत्रिम गर्भाशय-की खोज अवश्य की है, परन्तु वे उसमें केवल उन्हीं बच्चोंको पालपोष सकते हैं, जो सात आठ महीनेकी अवस्थामें भूमिष्ठ होते हैं, अथवा जिनके दिन पूरे होनेमें कुछ ही कालकी कमी रहती है। उनका यह काम भी बड़ी मुश्किलसे पार पड़ता है और बहुत सावधान रहना पड़ता है। परन्तु अगस्त्यमुनिके पिताने जो काम किया था, वह अभी उनके लिये कल्पनातीत है। बिना स्त्री-तत्वकी सहायता लिये केवल पुरुषके वीर्यको ही मनुष्यका रूप देना सहज काम न था। विश्वामित्रकी खोज अधूरी ही रह गयी अन्यथा उन्होंने अमैथुनी सृष्टिकी भी रचना कर डाली होती। पाश्चात्य विज्ञानके लिये अभी

यह बातें अगम्य है। वह अभी मूक है। लोग इन बातोंको झूठ मानते हैं, परन्तु जिस दिन वह सत्य प्रमाणित कर देगा उसदिन सब सत्य मानने लगेंगे। इसीलिये कहते हैं, कि ऋतुकाल और गर्भाधान सम्बन्धी जो नियम प्राचीन ग्रन्थोंमें अंकित किये गये हैं, उनपर विश्वास रख, जो लोग तदनुसार आचरण करेंगे, वे अवश्य उत्तम सन्तानको अपनी गोदमें बैठानेका सौभाग्य प्राप्त करेंगे।

सहवासका समय
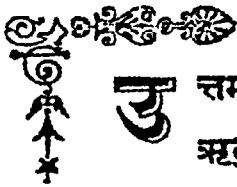
उत्तम सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको किस ऋतुमें किस समय सहवास करना चाहिये, इसका भी प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंने निर्णय कर रक्खा है। इस कार्यके लिये शिशिर, हेमन्त, वसन्त, वर्षा, शरद् और ग्रीष्म-ऋतुयें क्रमशः एक दूसरेसे निकृष्ट हैं। शीत-कालमें जठराग्नि प्रबल रहती है और पाचन क्रिया ठीकसे होती है, अतः मनुष्य विशेष वीर्यवान होते हैं, इसलिये शिशिर और हेमन्तको विहार किंवा सम्भोगके लिये सर्वश्रेष्ठ ऋतु कहा है। जिस समय नये फल फूल तथा पल्लव उत्पन्न होते हैं, उस समय अर्थात् वसन्त ऋतुमें, हवामें प्राणवायु (आक्सीजन) का अंश विशेष होता है, अतः विहा-रके लिये वह ऋतु भी अच्छी है। ग्रीष्म ऋतुमें उत्तापके

कारण रक्त और वीर्यकी दशा अच्छी नहीं होती, अतः बहुत ही कम मात्रामें सहवास करना चाहिये।

शीतकालमें इच्छानुसार, हेमन्तमें विषय वासना अत्यन्त प्रवल हो तब, वसन्त, वर्षा और शरद् ऋतुमें तीन तीन दिनके अन्तर पर और ग्रीष्मऋतुमें प्रति मास एक दो या अधिकसे अधिक चार वार स्त्री सहवास करना चाहिये। परन्तु इससे कोई यह न समझें, कि अन्यान्य नियमोंको ताकमें रख इसी नियमके अनुसार आचरण करना चाहिये। उपरोक्त नियमका तात्पर्य यह है, कि स्त्रीका ऋतुकाल भले ही बीत जाता हो, परन्तु ग्रीष्म ऋतुमें प्रति सप्ताह एकवारसे अधिक सहवास न करना चाहिये। मतलब, कि ऋतुकाल, तिथिवार और नक्षत्रादि पर ध्यान रखते हुए ऋतुके अनुसार स्त्री प्रसंग करना चाहिये।

यह तो हुई ऋतुओंकी बात। अब हम सहवासके समय पर विचार करेंगे। भारत वर्षमें रात्रिका ही समय स्त्री प्रसंगके लिये प्रशस्त माना गया है। शास्त्रकारोंका कथन है, कि दिनके समय सहवास करनेसे जीवनी शक्तिका ह्रास होता है।* जो लोग रात्रिके प्रथम प्रहरमें विहार करते

* प्राणा वा एते प्रस्कन्दति ये दिवा रत्या संयुञ्जन्ते।

हैं, उनकी सन्तान अल्पायु होती है। जो लोग रात्रिके दूसरे प्रहरमें सहवास करते हैं, उनकी सन्तान दरिद्री, भाग्य-हीन और मूर्ख होती है। जो लोग तीसरे प्रहरमें संयोग करते हैं, उनकी सन्तान दुष्ट होती है और आजन्म दुःखी बनी रहती है, परन्तु जो लोग चौथे प्रहरमें विहार करते हैं, उनके बच्चे बलवान, बुद्धिमान, धर्मनिष्ठ, श्रीसम्पन्न और दीर्घायुषी होते हैं। यदि कन्या हुई तो वह सती, साध्वी पति-प्रेम परायणा होती है और पुत्र होता है, तो सदाचारी और सर्वगुण सम्पन्न होता है।

यह हमारे शास्त्रकारोंका मत है और इसीको हम श्रेय-स्कर समझते हैं, परन्तु किसीका यह भी कथन है, कि शीतकालमें रात्रिके समय, शरद् ऋतुमें जब विषयेच्छा प्रबल हो तब, वसन्त ऋतुमें दिन या रात्रि किसी भी समय, वर्षा-ऋतुमें मेघ गर्जनाके समय, और ग्रीष्म ऋतुमें दिनको स्त्री समागम करना अधिक लाभदायी है। प्रातःकाल, सन्ध्या-काल, मध्य रात्रि और दो पहरका समय सदैव निषिद्ध है।

कुछ पाश्चात्य-विद्वानोंका मत इसके विपरीत है। उनका कथन है, कि सुबह सात से दस बजेतक सूर्यकी किरणों और वैद्युतिक प्रवाहोंके कारण वातावरण विशुद्ध रहता है। वायुकी शीतल लहरोंके कारण मन प्रफुल्लित

और चित्त स्वस्थ रहता है। यही समय सहवासके लिये उपयुक्त है।

डाक्टर आर० एम० डी० का कथन है, कि जिससमय स्त्री पुरुषोंकी मानसिक स्थिति ठीक न हो, जिस समय गरीष्ट भोजन किया गया हो, जिस समय हृदय शोक सन्तप्त और शरीर किसी परिश्रमके कारण श्रान्त एवम् क्लान्त हो रहा हो, उस समय सहवास करना ठीक नहीं। जिस समय शरीर भलीभाँति स्वस्थ और मन निश्चिन्त हो, हृदयमें किसी प्रकारकी ग्लानि किंवा उद्वेग न हो, वही समय स्त्री संगके लिये उपयुक्त समझना चाहिये।

डाक्टर ए० ए० फिनिश एम० बी० सी० एम० भी इसका हृदयसे समर्थन करते हैं। उनका कथन है, कि जिस समय गरीष्ट भोजन किया गया हो अथवा पाचन क्रिया हो रही हो, उस समय यह परिश्रम करना ठीक नहीं। रात्रिके अन्तिम भागमें, अच्छी तरह सो लेनेके बाद, जिस समय शरीर और मन दोनों भली भाँति स्वस्थ हों, उसी समय स्त्री और पुरुषोंको इस प्रवृत्तिमें पड़ना उचित है।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे ज्ञात होता है, कि रात्रिके अन्तिम भागमें ही सहवास करना अधिक लाभदायी है। परन्तु आजकल मानव समाजकी दशा ठीक इसके

विपरीत है। लोग रात्रिके पहले या दूसरे ही प्रहरमें इससे निवृत्त हो जाते हैं। और देशोंके सम्बन्धमें हम कोई निश्चयात्मक बात नहीं कह सकते, परन्तु भारतका तो यही हाल है। यहांके लोग निद्राभिभूत होनेके पहले ही, भोजनादिसे निवृत्त होनेके वाद इस नित्य कर्मसे भी निपट लेते हैं। यही कर्म शायद उनके दैनिक कर्त्तव्योंमें अन्तिम कर्तव्य होता है। फिर सोनेके अतिरिक्त उनका और कोई काम वाकी नहीं रहता।

वैज्ञानिक और शास्त्रकार जिस समय चित्त और शरीर स्वस्थ हो, उस समय यह कर्म करनेकी आज्ञा देते हैं, परन्तु लोग अज्ञानताके कारण भोजन करनेके वाद जिस समय पाचन क्रिया होती है, उसी समय इस प्रवृत्तिमें भी पड़ते हैं। उससमय दैनिक परिश्रमके कारण स्त्री पुरुषोंका शरीर आप ही थका रहता है, तिसपर वे इस कठिन परिश्रमका भार उठाते हैं। ऐसी दशामें उनका स्वास्थ्य और यौवन कितने दिन स्थिर रह सकता है? कितने दिन संसार-सागरमें उनकी जीर्ण नैया ठहर सकती है? जिस कर्म द्वारा हमारी भावी सन्तानका भाग्य निर्मित होता है, जिस कर्मपर हमारे सभी सुख दुःख अवलम्वित रहते हैं, अथच जो हमारे जीवण मरणका प्रश्न है, उसपर हम लोग विचारतक कर-

नेका कष्ट नहीं उठाते। हमलोग चाहें तो इन सब बातोंको बड़ी आसानीसे समझ सकते हैं और तदनुसार आचरणकर मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं।

इस अध्यायको समाप्त करनेके पहले हम कुछ और ज्ञातव्य बातें भी अंकित कर देना उचित समझते हैं। शास्त्रकारोंका मत है, कि पुरुषोंको अपनेसे बड़ी अवस्था वाली स्त्रीके साथ कदापि सम्भोग न करना चाहिये। ऐसा करनेसे युवा पुरुष भी सामर्थ्यहीन और वृद्ध हो जाता है। गर्भवती स्त्रीके साथ भी सम्बन्ध रखना निषिद्ध है। इससे न केवल गर्भहीको पीड़ा होती , बल्कि वीर्यका अपव्यय भी होता है। जब सन्तानोत्पत्तिके लिये ही सहवासकी योजना की गयी है, तब गर्भावस्थामें सम्बन्ध रखना ही व्यर्थ है। इसी प्रकार ऋतुमती, कामवासना हीन, गन्दी, स्नेह-रहित, प्रदरादि रोगाक्रान्त और सगोत्रा स्त्री भी त्याज्य है। जो स्त्री रूपवती, सुशीला, सद्गुणी, उच्च कुलोद्भवा, काम-वती, सुघड़, हृष्टपुष्ट और वस्त्रालंकारोंसे विभूषित हो, उसीके साथ सहवास करना उचित है। क्षुधातुर, तृषा-तुर, बालक, वृद्ध और रोगी पुरुषको भूलकर भी इस प्रवृ-त्तिमें न पड़ना चाहिये।

सम्भोग करनेके बाद मनमें उल्लास और शरीरमें स्फूर्ति
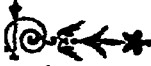
तथा चैतन्य रहे, व्यायामकी अभिरुचि हो और जननेन्द्रिय प्रफुल्लित रहे, तो समझना चाहिये, कि सम्भोगकी आवश्यकता थी और उसकी यथोचित रूपसे पूर्त्ति की गयी है, परन्तु संयोगके बाद यदि बेचैनी और निर्बलता मालूम हो, तो निश्चय समझना चाहिये, कि अनुचित समयमें, व्यर्थ ही संयोगकर शारीरिक और मानसिक शक्तिका ह्रास किया गया है। प्रतिदिन संयोग करनेपर यदि यह बात दिखाई दे, तो तीन तीन दिनके बाद और फिर भी अन्तर न पड़े तो सात सात दिनके बाद स्त्री संग करना चाहिये। यदि इतने पर भी शरीर क्षीण होता दिखाई दे, तो समयको और भी अधिक बढ़ा देना चाहिये। अशक्त, सामर्थ्यहीन और रोगी मनुष्यके लिये तो यथासम्भव अधिक समय तक इन्द्रिय निग्रह करना ही श्रेयस्कर है।

अति-विहार

ऐसे भाग्यवश जो लोग हस्तमैथुनसे बच जाते हैं, प्राकृतिक नियमको भंग करनेवाली उस क्रिया द्वारा अपने हाथ अपवित्र नहीं करते और तनमनका सर्वनाश करनेवाली उस बुरी आदतके शिकार नहीं होते, वे बहुधा यौवन कालमें मदान्ध हो अति विषयमें प्रवृत्त होते हैं और अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं। जो फल हस्तमैथुनकी आदतका होता है, वही प्रायः इसमें भी होता है। भेद केवल इतना ही है, कि हस्तदोषका फल हाथोहाथ कुछ ही दिनोंके अन्दर मिल जाता है, किन्तु इसका फल मिलनेमें कुछ अधिक समय लगता है।

बहुत लोग जो प्रायः बेकार होते हैं, जिन्हें विशेष कामधन्धा या सतत परिश्रम नहीं करना पड़ता, वे रातदिन

विषय सम्बन्धी चिन्ताओंमें ही निमग्न रहते हैं। वे अपने यौवनको चार दिनकी चाँदनी न समझ कर अचल एवम् चिरस्थायी समझते हैं और रात, दिन, समय, कुसमय, शारीरिक मानसिक शक्ति किंवा इस दुर्व्यसनके भयंकर परिणामोंकी ओर दृष्टिपात न कर विषय प्रवृत्तिमें अन्धा धुन्ध रूपसे प्रवृत्त होते हैं और यौवन खो बैठते हैं। इसी-लिये तो हमारे देशमें बीस वर्षकी युवतियाँ और पच्चीस वर्षके युवक बुड्ढे बुड्ढीयोंका दृश्य उपस्थित करते हैं!

जैसे भूल कर भी अग्निको स्पर्श करने वालेका हाथ जल जाता है, वैसे ही अनजानमें भी प्राकृतिक नियम भंग करने वालेको सजा अवश्य मिलती है। सहवास केवल उसी समय करना चाहिये जब इन्द्रियाँ आप ही आप उत्तेजित हों और काम वासना प्रबल रूप धारण करे। किन्तु यदि ऐसा न हो और केवल मनने ही निरंकुशता धारण की हो, तो इन्द्रियोंको उत्तेजित करना और विषय वृत्तिमें प्रवृत्त होना किसी प्रकार वाञ्छनीय नहीं। ऐसा करनेसे हमलोग लाभके बदले हानि उठाते हैं, कुछ प्राप्त करनेके बदले खो बैठते हैं। प्रकृति हमें इसके लिये कदापि क्षमा नहीं करती।

संसारमें जो मनुष्य अपने भविष्यका विचार नहीं

करता, वह मूर्ख समझा जाता है। फिर भी कितने दुःखकी बात है, कि यह जानते हुए भी, कि वीर्य ही शरीरका सार है, वीर्य ही बल बुद्धिका आधार है और वीर्य ही पर जीवन अवलम्बित है, लोग उसकी रक्षाकी ओर ध्यान नहीं देते। यह सभी जानते हैं, कि वृद्धावस्थामें इसकी कमो पड़ जायगी और बिना इसके जीवन धारण करना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव हो जायगा, फिर भी लोग उसका मूल्य नहीं समझते। जिस तरह नीव हिल जाने पर मकान और जड़ काट देने पर वृक्ष खड़ा नहीं रह सकता, उसी तरह वीर्य हीन शरीर अधिक समय तक नहीं चल सकता। मनुष्यको चाहिये, कि वह धनकी अपेक्षा वीर्य रक्षामें अधिक यत्नशील रहे, क्योंकि धन तो किसी समय भी प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु खोया हुआ वीर्य फिर हाथ नहीं आ सकता। जो लोग व्यर्थ ही अपना वीर्य नष्ट करते हैं, वें प्रति क्षण मृत्युपथकी ओर अग्रसर होते हैं। जबतक शरीरमें वीर्य रहता है, तभी तक यौवन भी स्थिर रहता है। वीर्यहीन मनुष्य छोटी अवस्थामें ही वृद्ध बल्कि वृद्धसे भी गया-बीता हो जाता है। जो लोग अपने यौवनकी यथोचित रूपसे रक्षा नहीं करते, उन्हें भविष्यमें अवश्य पश्चाताप करना पड़ता है। परन्तु दुःखकी बात यही है, कि जो बातें

बादको सूझती हैं, वे पहले नहीं सूझतीं। यदि ऐसा न हो, तो किसीका भी जीवन दुःखमय न हो पड़े।

बाल्यावस्थामें विवाह करनेसे मनकी प्रवृत्ति सदैव काम वासनाकी ओर बनी रहती है। नादान लड़के और लड़कियाँ विवाहका उद्देश्य न समझनेके कारण, केवल विषयकी ही ओर आकर्षित होते हैं और यौवनमें पदार्पण करते न करते अपना सर्वनाश कर लेते हैं। परन्तु लोगोंको यह बात भली भाँति अपने हृदय पर अंकित कर रखना चाहिये, कि केवल विषय वासनाको चरितार्थ करना ही विवाहका एकमात्र उद्देश्य नहीं है। विवाहकी योजना केवल इसीलिये की गयी है, कि जिससे स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरेकी सहायतासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पदार्थोंको आसानीसे प्राप्त कर सकें। सहवास इन्हीं चारोंके अन्तर्गत है और उसका प्रकृत उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति भिन्न और है ही नहीं।

अति विहारकी बुरी आदत लगनेका एकमात्र कारण है दाम्पत्य-विज्ञानकी अनभिज्ञता। यदि लोग इस विज्ञानको भली भाँति समझने लगें, वीर्य और यौवन क्या है, उसकी रक्षासे क्या लाभ और अपव्ययसे क्या हानि होती है—यह जानने लगें, तो हमारा दृढ़ विश्वास है, कि वे भूल कर भी

अपने हाथों यह अनर्थ न करें। जो लोग इन बातोंको नहीं समझते, वे तबियत खराब करने वाली पुस्तकोंके पठन, कुसंगति और निरंकुशताके कारण इस कुव्यसनमें लिप्त हो जाते हैं। परन्तु ध्यानमें रखनेकी बात है, कि परिणाम किंवा लाभ हानिका विचार किये बिना विचारशील मनुष्य-को एक कदम भी आगे न बढ़ाना चाहिये। जो चीजें आरम्भमें आकर्षक और मनोमुग्धकर प्रतीत होती हैं, वही अन्तमें मनुष्यको धोखा देती हैं। खासकर विषय वासनाके सम्बन्धमें तो यही बात दिखाई देती है। स्त्रियोंकी अद्भुत रूपराशिका दर्शन, उनके वीणा विनिन्दित स्वरमें निकली हुई सुमधुर बातोंका श्रवण एवम् उनका आलिङ्गन सभी कुछ आरम्भमें अलौकिक और आनन्द प्रद प्रतीत होता है, परन्तु अन्तमें वही सब बातें दुःखका कारण हो पड़ती हैं। लोग पहले इन सब बातोंके पीछे पागल हो जाते हैं, विषयानन्द उन्हें उन्मत्त बना देता है, यहाँतक, कि उन्हें सारासारका विचारतक नहीं रहता—वे अपने आपको भी भूल जाते हैं। उस समय वे इन्द्रियोंको बारंबार उत्तेजित और विषय वासनाको चरितार्थ करनेमें किञ्चित भी संकोच नहीं करते, परन्तु अन्तमें उसकी खराबियाँ भयंकर रूप धारण कर उनके चित्तको व्याकुल और जीवनको अशान्त

वना देती हैं। उस समय मनुष्य मृत्युकी शान्ति-मयी गोदमें प्रश्रय ग्रहण करनेकी कामना करने लगता है और कामना करते ही करते किसी दिन कालके गालमें समा जाता है। मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ मनुष्य उस समय अपने इन कर्मों के लिये न जाने कितना पश्चाताप और सोच विचार करता है, परन्तु उस समय यह सब करनेसे लाभ ही क्या हो सकता है? प्रकृति उसे उसके अनियमित व्यवहारके कारण दण्ड अवश्य देती है और उसे वह चुपचाप विना किसी आपत्तिके सहन करना पड़ता है।

अति विहारमें प्रवृत्त होनेवाले लोग आरम्भमें सानन्द कालयापन करते हैं और समझते हैं, कि इस समय हमारे बराबर सुखी संसारमें और कोई है ही नहीं, परन्तु कुछ ही दिनोंके बाद उनका शरीर रोगका घर हो जाता है और मृत्युविभीषिका भयंकर रूप धारण कर उनके सन्मुख नृत्य करने लगती है। जो लक्षण हस्तदोषके रोगीमें पाये जाते हैं, वही प्रायः इस रोगीमें भी दिखाई देते हैं। रोगका मूल कारण होता है—वीर्यक्षय, अतः उसके कारण उत्पन्न होनेवाली समस्त व्याधियाँ दोनों प्रकारके रोगियों पर समान रूपसे ही आक्रमण करती हैं। शरीर दुर्बल हो जाता है। पैरकी पिण्डी और शरीरके सन्धिस्थानोंमें

पीड़ा होने लगती है। चेहरा उतर जाता है। नाड़ीकी गति मन्द हो जाती है। नेत्र निस्तेज हो जाते हैं। चाल लटपटी हो जाती है और कितनों हीके पैर इतने कमजोर हो जाते हैं, कि शरीरका भार भी नहीं सम्हाल सकते। पाचन-शक्ति अनियमित हो जाती है। पेटमें कब्जियत बनी रहती है। पहले कुछ कड़ा और बादको पतला दस्त होता है। स्त्री-संगके समय सत्वर वीर्य स्खलित हो जाता है। बवासीरका रोग भी बहुधा इसी कोटिके रोगियोंमें दिखाई देता है। वीर्यक्षयके कारण जननेन्द्रिय और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली समस्त नाड़ियाँ व यन्त्र समूह खराब हो जाते हैं अतः बारंबार वीर्यस्राव होने लगता है। इसके अतिरिक्त नेत्र और मस्तिष्क सम्बन्धी तथा और न जाने कितने रोग उत्पन्न होकर रोगीके लिये यमसदनका मार्ग प्रशस्त बना देते हैं।

यह सब मनुष्यको अपने ही कर्मके कारण भोग करना पड़ता है। परन्तु इस सम्बन्धमें अब और अधिक न लिख कर हम अपने पाठकोंसे केवल इतना ही कहेंगे, कि क्षणिक आनन्दके प्रलोभनमें पड़, उन्हें स्त्री संगकी मर्यादा भूल कर भी उलङ्घन न करनी चाहिये। जो नव-दम्पति अपनी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दशा पर विचार किये

विना ही अति विहारमें प्रवृत्त होते हैं, उनका घर न केवल अल्पजीवी सन्तानोंसे ही भर जाता है, वल्कि अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करते हुए, उन्हें भी शीघ्र अपनी जीवन यात्रा समाप्त करनी पड़ती है। इसलिये पिछले अध्यायोंमें लिखे हुए नियमोंके अनुसार ऋतुकाल, शारीरिक सामर्थ्य और अवस्थादि वातों पर विचार कर सन्तानोत्पत्तिके लिये ही मैथुन कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। इस सम्बन्धमें नियमित रहना ही अजरत्व और अमरत्व प्राप्त करनेका मूल मंत्र है। यही सुख और शांति प्रदान करनेवाली एकमात्र साधना है।
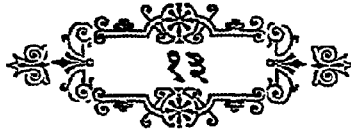
वंश-वृद्धि
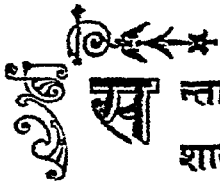
सन्तानोत्पत्ति ही विवाहका प्रधान उद्देश्य है। शास्त्रोंमें लिखा है, कि "पुत्रार्थे क्रियते भार्या"— अर्थात् पुत्र प्राप्तिके लिये विवाह करे। मनुभगवानका कथन है, किः—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः॥
अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्ति तो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥

अर्थात् मनुष्यके शिरपर तीन ऋण रहते हैं—ऋषिऋण, पितृऋण और देवऋण। इन तीनों ऋणसे मुक्त हुए विना गृहस्थ मोक्ष मार्गकी ओर अग्रसर नहीं हो सकता, अतः इन तीनों ऋणसे उसे अवश्य मुक्त होना चाहिये। स्वाध्याय

द्वारा ऋषि ऋण, पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृऋण और यज्ञ साधन द्वारा देवऋणसे मुक्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकार श्रुतिका कथन है, कि:—

प्रजा तन्तुं मा व्यवच्छेत्सी।

अर्थात् पितामह, पिता, पुत्र और पौत्रादिकी परम्परासे प्रजाका सूत्र अटूट रखना चाहिये। संसारमें भी हम देखते हैं, कि जिसके सन्तान नहीं होती, उसको लोग अभागा कहते हैं। जिन स्त्रियोंके लड़के नहीं होते, उनको लोग आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते। इसके विपरीत जिसके दो चार लड़के होते हैं, वह भाग्यशाली समझा जाता है। मानव समाजमें उसकी प्रशंसा होती है और वह स्वयं भी अपनेको धन्य समझता है।

सन्तान उत्पन्न होनेपर पहले तो मातापिताको असीम आनन्द होता है। सन्तान क्या हुई, मानो उनके गौरव और प्रतिष्ठामें वृद्धि करनेवाली एक वस्तुका आविर्भाव हुआ। एक पुरुष जो अबतक बड़े बूढ़ोंकी दृष्टिमें तीन ऐतवारका छोकरा था और जिसने एक बालिकाका पाणि-ग्रहणकर केवल उसके पतिका ही पद प्राप्त किया था, वह अब पूज्य पिताके पदपर अधिष्ठित हो गया। पिताका पद दूसरे पदोंकी अपेक्षा बहुत ही ऊंचा और पवित्र होता है।

इसीलिये लोग उसे आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। दूसरी ओर वह बालिका, जिसने अभी चार ही दिन हुए नववधूका पद प्राप्त किया था, जो अबतक कल्पनाके मनोराज्यमें ही विचरण करती थी, वह अब माताका पवित्र आसन प्राप्तकर अपने नारी-जीवनको सार्थक समझने लगी। लोगोंकी दृष्टिमें उन पति पत्नी दोनोंका महत्त्व बढ़ गया। दोनोंका प्रेम जो अबतक कोरा प्रेम था, जिसमें पाशविक प्रेमकी ही मात्रा अधिक रहती थी और लोग जिसे घृणित दृष्टिसे देखते थे, वह अब सफल और पवित्र हो गया। पति पत्नी —दोनोंका सम्बन्ध अधिक दृढ़ और अधिक मधुर हो गया। साथ ही घरवालोंके हृदय भी आनन्दसे पूरित हो गये। उन्हें मनोरञ्जनकी एक सामग्री मिल गयी। नन्हेसे बच्चेको अपनी गोदमें बैठा हुआ देख, किसका हृदय आनन्दित नहीं होता? किसे आह्लाद नहीं होता?

बच्चेके कारण घरकी भी श्री बढ़ गई। अपुत्रस्य गृहं शून्यम्। अबतक जो घर श्मशानकी भांति सूना और सिन्दूर हीना विधवा ललाटकी तरह शोभा हीन मालूम होता था, वह अब भरापुरा और शोभायमान प्रतीत होने लगा। जो घर अन्धकारमय था वह अब आलोकित हो उठा। जननी पदपर अधिष्ठित होनेके कारण सखी सहेलियोंमें माताका

और पितृत्व प्राप्त करनेके कारण इष्ट मित्रोंमें पिताका गौरव बढ़ गया। अड़ोसी पड़ोसी दोनोंके भाग्यको सराहने लगे। स्त्री पुरुष दोनों अपने दाम्पत्य-जीवनको सफल होते देख अपनेको धन्य समझने लगे।

हमारे भारतमें यही बात होती है। भारतहीमें क्यो समस्त संसारमें सन्तान उत्पन्न होनेपर आनन्द मनाया जाता है। वे जंगली मनुष्य, जिन तक अभी सभ्यताकी रोशनी नहीं पहुंच पायी, और जो अबतक संसारकी आश्चर्य जनक प्रगतियोंसे अवगत नहीं हुए, वह भी नाना प्रकारके उत्सव मनाते हैं। पशु पक्षी और कीट पतंगमें भी यही बात पाई जाती है। यह सब क्यों होता है? इसीलिये, कि सन्तानोत्पत्तिको न केवल मनुष्य ही, बल्कि पशुपक्षी भी अच्छा कार्य समझते हैं। उनके जोवनमें इससे बढ़कर आनन्दका प्रसंग शायद ही और आता हो। इससे जन-समाजमें उनका गौरव बढ़ता है, प्रतिष्ठामें वृद्धि होती है और सर्वत्र आदर मिलता है। लोग यह भी समझते हैं, कि हमारे सुख दुःखका एक संगी उत्पन्न हुआ, जब वृद्ध होंगे, हाथ पैर थकेंगे, तब इससे सहारा मिलेगा। इसी लिये सन्तान उत्पन्न होनेपर लोगोंको असीम आनन्द होता है। इसीलिये वे आनन्दोत्सव मनाते हैं।

सन्तानोत्पत्तिसे इस प्रकार आनन्द होना स्वाभाविक ही है। इससे न केवल मातापिता अपने भावी जीवनको सुखमय समझने लगते हैं, बल्कि सृष्टि रचनाके प्राकृतिक कार्यमें भी सहायता पहुंचती है। परन्तु सम्प्रति बहुतेरे वैज्ञानिक सन्तानोत्पादनके कार्यको अनुचित समझने लगे हैं। उनका कथन है, कि अधिक सन्तान उत्पन्न होनेसे कोई लाभ नहीं। यदि सब लोग इसी तरह अधिकाधिक सन्तानें उत्पन्न करते रहे, तो कुछ दिनमें जन संख्या इतनी अधिक बढ़ जायगी, कि उन्हें खानेको अन्न, पहरनेको कपड़े और रहनेको स्थान तक न मिल सकेगा। इसलिये लोगोंको चाहिये, कि वह अधिक संख्यामें सन्तान उत्पन्न करना छोड़ दें।

लोग वैज्ञानिकोंकी यह बात कहांतक मानेंगे, सो नहीं कहा जा सकता। वे देखते हैं, कि अनादिकालसे सन्तानोत्पत्तिका यही क्रम चला आ रहा है और अबतक उन्हें रहनेके लिये स्थान आदिकी कमी नहीं पड़ी, तो अब भविष्यमें कैसे पड़ सकती है? और यदि पड़े भी तो पड़ा करे। वे इसकी चिन्ता क्यों करें। उन्हें तो एक ही कर्ममें प्रवृत्त होनेपर दुगुना लाभ होता है। एक ओर आनन्द मिलता है और दूसरी ओर सन्तान उत्पन्न होती है। सन्तानो-

त्पत्ति एक पवित्र कर्म माना गया है, इसलिये उन्हें वह कर-नेमें किसी प्रकारका संकोच भी नहीं मालूम होता। वे देखते हैं, कि जिसके अधिक सन्तानें होती हैं, वह संसारमें आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है। ऐसी दशामें लोग सन्ता-नोत्पत्तिके कार्यसे कैसे बिमुख हो सकते हैं?

केवल भारतहीमें क्यों, हम तो समझते हैं, कि समस्त संसारमें अधिक सन्तानोंको जन्म देना बड़े गौरवकी बात समझी जाती है। पाश्चात्य देशोंमें कहीं कहीं अधिक सन्तान उत्पन्न होनेपर उनके माता पिताको राज्यकी ओरसे पुरस्कार देनेकी प्रथा प्रचलित है। लोग ऐसे दम्पतियोंके भाग्यकी सराहना करते हैं और वैसा सम्मान प्राप्त करनेके लिये लालायित रहते हैं। अभी हालहीमें मैडम मोलियर नामक २६ वर्षकी एक फ्रेञ्च युवतीने एक साथ ही चार कन्याओंको जन्म दिया था। इसके पहले भी उसे एक साथ तीन बच्चे उत्पन्न हुए थे। फ्रांसके जिस शह-रमें वह युवती रहती थी, उस शहरका मेयर दोनों वार उसे पारितोषिक देने गया था। न केवल मेयर ही, फ्रांसके प्रेसीडेण्टने भी कुछ चीजें पारितोषिक रूपमें भेजकर इस सौभाग्यके लिये उन्हें बधाई दी थी। पतिपत्नी दोनों इस सम्मानको प्राप्तकर अपनेको धन्य समझने लगे थे।

हमने और भी कतिपय उदाहरण संग्रह किये है, जिनको देखनेसे प्रतीत होता है, कि अधिक सन्तानोंको जन्म देनेसे सिवाय प्रशंसाके किसी दम्पत्तिकी निन्दा नहीं होती। इङ्गलैण्डके पिटरबरो परगनेकी एक महिलाने चार सवाचार वर्षमें दो बार तीन तीन बच्चोंको जन्म दिया था। इसीतरह एक बेलजियन महिलाने साल भरसे कुछ ही अधिक दिनोंमें छः बच्चोंको जन्म दिया था—पहले तीन बच्चे जनवरीमें और दूसरे तीन उसी सालके दिसम्बरमें भूमिष्ट हुए थे। पैरिसकी एक भठियारिनने तो इनसे भी बाजी मार ली थी। वह प्रतिवर्ष तीन तीन बच्चोंको जन्म देती थी। यह क्रम सात वर्ष तक चलता रहा। इतने समयमें उसका घर २१ बच्चोंसे भर गया। घरमें उन्हें खेलनेके लिये शायद स्थान भी न बचा होगा, परन्तु संसार भरने उसके सौभाग्यकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की।

चिकागोकी मिसिस ओरमसबी भी ऐसी ही एक महिला हैं। इन्होने ७ वर्षमें १४ बच्चोंको जन्म दिया था। सभी अबतक जीते जागते हैं। पहले पहल उसके एक साथ ही चार बच्चे उत्पन्न हुए—दो लड़के और दो लड़कियाँ। दुबारा तीन लड़कियाँ ही लड़कियाँ उत्पन्न हुईं। फिर दोबार दो दो बच्चे भूमिष्ट हुए—एकबार दो लड़के और

दूसरी वार दो लड़कियाँ। इसके बाद तीन बार एक एक बच्चा भूमिष्ठ हुआ। इस तरह ७ वर्ष में उस वीर महिलाने अपने देशकी जन संख्यामें १४ मनुष्योंकी वृद्धि की।

योर्कशायरके एक किसानके बालबच्चोंकी संख्या ३८ तक जा पहुंची थी। रोमन अरकाटको उनकी आइरिश पत्नीने ३० बच्चे प्रदान किये थे, परन्तु लेवी ब्रेकशो नामक एक कनेडियनने इन सबोंसे बाजी मार ली। इन्होंने तीन विवाह किये थे। तीनों स्त्रियोंसे उन्हें ४१ बच्चोंकी प्राप्ति हुई। सन १९२३ में मिष्टर लेवी ब्रेकशोने बड़ी धूम-धामके साथ अपना छाछठवाँ जन्मोत्सव मनाया था। उस समय उनकी एक भी पत्नी जीवित न थी, परन्तु बच्चोंकी फौजने उन्हें किञ्चित भी वह अभाव अनुभव करने न दिया।

एक स्कोटिश किसानका उदाहरण भी इसी जोड़का है। उसके बालबच्चोंका नम्बर ६२ पर जा पहुँचा था, जिसमेंसे ४६ अपना शैशवकाल अतिक्रमण कर सके थे। शेषने उसी अवस्थामें मृत्युकी गोद्में विश्रांति ग्रहण की थी।

अब हम कई ऐसे परिवारोंका उदाहरण देना चाहते हैं, जो बहुत थोड़े समयमें आशातीत रूपसे पल्लवित होते हुए देखे गये हैं। यार्कशायरकी मिसिस्र लाइट फुट ६७

वर्षकी अवस्थामें जिस समय मृत्यु शैय्यापर पड़ीं, उस समय उनके आस-पास १६१ मनुष्य एकत्र हुए थे। यह लोग कोई बाहरी मनुष्य न थे। सभी उनके निजी बालगोपाल थे। मिसिस लाइट फुटने स्वयं ६ बच्चोंको जन्म दिया था। ६ के ७६ बच्चे हुए। ७६ के ७३ हुए और उन ७३ में भी एकके नवजात शिशुको भूलेमें झुलानेका सौभाग्य उस वृद्धाने प्राप्त किया था।

केन्टकी मिसिस हनीवुड अपनी ६४ वर्षकी अवस्थामें इसी तरह ३६७ बच्चोंको देख सकी थीं। उन्होंने स्वयं १६ बच्चोंको जन्म दिया था। तीसरी पुश्तमें १६ से ११४ हो गये। चौथी पुश्तमें ठीक उसके दुगुने अर्थात् २२८ हुए और पाँचवी पुश्तके ६ बच्चोंको भी अपनी गोदमें बैठा कर उस बुढ़ियाने आनन्द मनाया था। स्टोवकी उमराव जादी लेड़ी टेम्पल इन सबोंसे चढ़ीबढ़ी थी। उसकी सन्ततिका नम्बर, सुनते हैं, कि ७०० से भी ऊपर जा पहुंचा था। इसके अतिरिक्त इस समय भी कुछ ऐसे मनुष्य जीवित हैं, जिनकी सन्तान सैकड़ोंसे गिनी जाती है। ओहियो स्थित किलटनके निवासी मिस्टर थोमस इलीसन ऐसे ही एक पुरुष है। इनकी अवस्था इस समय ६३ वर्षकी है। इनके तीन व्याह हुए थे। इनकी

सबसे बड़ी सन्तानकी अवस्था इस समय ६५ वर्षकी है। मिस्टर थोमस इलीसनको उनकी तीनों स्त्रियोंने ५० बच्चे अर्पण किये थे। ५० के १२५ बच्चे हुए। इनमेंसे अभी बहुतोंकी अवस्था बहुत छोटी है। जो बड़े हैं उनके बच्चोंकी संख्या ६० है। इन साठमेंसे भी कई एक पिताके पूज्य पद पर अधिष्ठित हो चुके हैं। इनके बच्चोंका नम्बर भी २७ पर जा पहुँचा है। इस तरह मिस्टर थोम्स इलीसन अपने नाती पोते और उनकी सन्तति मिलाकर २६२ प्राणियोंको देखनेका सौभाग्य प्राप्त कर चुके हैं। इस संख्यामें उनके दामाद, कुलवधू, या नाते रिश्तेदार, शामिल नहीं है। संसारमें इस समय सबसे बड़ा परिवार इन्हींका है।

ब्रह्मदेशकी एक बुढ़ियाका भी यही हाल है। वह करन जातिकी है और कीमन नामक ग्राममें रहती है। इस समय उसकी अवस्था १६३ वर्षके करीब है। वह स्वयं नहीं जानती, कि कब उसका जन्म हुआ था। ब्रह्मदेशमें जिस समय बोदापाय नामक राजा सिंहासनारूढ़ हुआ, उस समय उसकी अवस्था ३० वर्षकी थी और वह दो कन्याओंकी माता थी। इससे जाना जा सकता है, कि उसका जन्म करीब १७६१ ईस्वीमें हुआ था। पहले

पतिका देहान्त हो जाने पर इसने दूसरा विवाह किया था, जिससे इसे और दो कन्यायें उत्पन्न हुई थीं। चार कन्याओंके ४ पुत्र हुए। उन चारोंके ६६ बच्चे हुए और उनमेंसे भी कुछके १८ बच्चे उत्पन्न हुए है। इस तरह उसके परिवारमें इस समय १०५ मनुष्य हैं। अन्यान्य स्वजनोंसे कोई काम नहीं। सबसे बड़ी लड़कीकी अवस्था १२० वर्षकी है और वह अपनी मातासे कहीं अधिक बूढ़ी दिखाई देती है। इस भाग्यशाली बुढ़ियाका नाम डाजाऊ है।

इन उदाहरणोंसे हमारे पाठक गण समझ सकते हैं, कि अधिक सन्तान उत्पन्न होने पर कोई किसीकी निन्दा नहीं करता, अतः सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी जा सकती। स्वतन्त्र रूपसे यह कार्य सम्पन्न होता चला आया है और अनन्तकाल तक होता रहेगा। ऐसी दशामें वैज्ञानिकोंकी यह चिन्ता, कि लोग क्या खायेंगे, क्या पहनेंगे और कहाँ रहेंगे, नितान्त अनावश्यक है। प्रकृति स्वयं सृष्टिकी अनर्गल वृद्धि पर नियन्त्रण रखती है। सर्पिणी एक साथ ही हजारों अंडे प्रदान करती है। यदि उन अंडोंसे एक एक सर्प उत्पन्न हो और वे भी इसी तरह वंश वृद्धि करें, तो कुछ ही दिनोंमें समूची पृथ्वी सर्पमय हो जाय, परन्तु प्रकृतिकी लीला

ऐसी विचित्र है, कि सर्पिणी स्वयं अपने अंडोंको खा डालती है। शायद ही एक आधा अंडा बच रहता है और उससे एक आधे सर्पका जन्म होता है।

इसी तरह मछलियाँ और अन्यान्य जलचर भी हजारों अंडे प्रसव करते हैं, परन्तु वहाँ यह हाल है, कि बड़े जल चर छोटे जलचरोंको खा डालते हैं; अतः उनकी वंशवृद्धि नहीं होने पाती। यदि एक कबूतरका जोड़ा बराबर अंडे देता रहे और उन अंडोंसे बराबर कबूतरोंका जन्म होता रहे तथा वे सभी अनवरत रूपसे वंशवृद्धि करते रहें तो कुछ ही दिनोंमें यह पृथिवी और आकाश कबूतरोंसे भर जाय, परन्तु ऐसा नहीं होता। प्रकृति बहुधा उनके अंडोंको ही नष्ट कर देती है। इसके बाद अनेक पशु पक्षी उनको अपना शिकार बनाते हैं। फल यह होता है, कि संसारमें उनकी संख्या हदसे अधिक नहीं होने पाती।

पशुओंमें भी यही हाल है। उनके बच्चे भी मर जाते हैं अथवा शिकार बनाये जाते हैं। अन्यथा उन्हें भी रहनेके लिये स्थान मिलना असम्भव हो जाय। पशु पक्षियोंकी जाने दीजिये। एक वृक्षका उदाहरण लीजिये। आम, नीम, पीपल या वटवृक्षमें कितने फल लगते हैं। प्रत्येक फलमें बीज और बीजमें उत्पादक शक्ति होती है।

यदि वे सभी निर्विघ्न रूपसे अंकुरित हो उठें और उनसे वृक्ष तैयार होने लगें, तो यह पृथिवी उनके लिये भी यथेष्ट स्थान नहीं दे सकती। परन्तु प्रकृति यह कार्य निर्विघ्न रूपसे नहीं होने देती। वह स्वयं अनेक प्रकारसे, अनेक बहानोंसे, अनेक रूपसे उनका नाश कर देती है। यही हाल मानव-समाजका है। यदि निर्विघ्न रूपसे निर्द्वन्द होकर सब लोग वंशवृद्धि करते रहें, तो इसमें सन्देह नहीं कि वैज्ञानिकोंकी बात आँखोंके सामने आ सकती है। परन्तु प्रकृति इस प्रक्रियामें बाधा देनेके लिये स्वयं यत्नशील रहती है। वह अनेक मनुष्योंको बुरी आदतोंमें डाल कर इस तरह रोगी बना देती है, कि वे सन्तानोत्पत्तिका कार्य ही नहीं कर सकते। इसके बाद जो लोग इस कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, वे तथा उनकी सन्तान नाना प्रकारके रोगोंसे ग्रसित रहती है। प्लेग, हैजा और महामारी आदि ऐसी ऐसी बीमारियाँ चलती हैं, कि एक साथ ही लाखों मनुष्योंका सफाया हो जाता है। इनके अतिरिक्त बढ़ी हुई सृष्टिको परिमित बनानेके लिये प्रकृति और उपायोंसे भी काम लेती है। कहीं अति वृष्टिके कारण जल प्रलय उपस्थित हो जाता है, कहीं जापान और इटालीकी तरह भूकम्प और ज्वालामुखी फट पड़ते

हैं, कहीं अकाल पड़ जाता है और कहीं युरोपकी भाँति महासमराग्निमें लक्षावधि मनुष्य स्वाहा हो जाते हैं। इस तरह क्या मनुष्य, क्या पशु पक्षी और क्या कीट पतंग—चाहे जितनी वंशवृद्धि करें, प्रकृति किसी न किसी प्रकार उनका नाश कर उन्हें परिमित बना देती है। वह किसी तरह भी उन्हें निश्चित परिमाणसे अधिक नहीं बढ़ने देती। उसके इस कार्यमें कोई बाधा नहीं दे सकता।

परन्तु मनुष्य बड़ा बुद्धिमान प्राणी है। वह अनादि कालसे प्रकृतिको अपने वश करनेकी चेष्टा कर रहा है। प्रकृति और उसके बीच सदैव युद्ध हुआ करता है। अनेक बार वह प्रकृति पर विजय प्राप्त कर अपना काम निकाल लेता है। इसीलिये आज यह प्रश्न उपस्थित है, कि अधिक बच्चोंको उत्पन्न कर, उन्हें प्रकृतिका शिकार क्यों बनाया जाय? क्यों न उतने ही बच्चे उत्पन्न किये जायें, जितने संसारमें निर्विघ्न रूपसे रह सकें और अपनी जीवन यात्रा सानन्द समाप्त कर सकें? क्यों न उन बच्चोंका उत्पन्न करना बन्द कर दिया जाये, जिन्हें प्रकृति किसी न किसी बहाने कालके कराल गालमें झोंक देती है?

हम वैज्ञानिकोंकी यह बात मानते हैं। प्रकृतिसे युद्ध करना अनुचित नहीं। मनुष्य पद पद पर उससे

युद्ध करता है। यदि हम प्रकृतिसे युद्ध न करें, तो किसी तरह संसारमें रह ही नहीं सकते। जन्म ग्रहण करते ही वह हमें स्वर्गका रास्ता दिखा दे। परन्तु हम उसके प्रत्येक वारका प्रतिकार करते हैं। जिस तरह होता है, अपनी रक्षा करते हैं। कपड़े पहन कर शीत, वायु, वर्षा और धूपसे शरीरको बचाते हैं, मकान बनाकर सुरक्षित रहनेकी चेष्टा करते हैं और अन्न जल, फल फूल एवम् कन्द मूल आदि वस्तुओंको काममें लाकर जीवन धारण करते हैं। इसी तरह प्रकृतिसे संग्राम करते हुए हम अग्रसर होते हैं। अन्तमें जब हम प्रकृतिके वारोंका प्रतिकार नहीं कर सकते, तब वह हमको दबा लेती है और हमारी जीवन यात्राका अन्त आता है। इसीको लोग जीवन संग्राम कहते हैं।

बिना प्रकृतिसे युद्ध किये हम संसारमें आगे बढ़ ही नहीं सकते, इसलिये प्रकृतिसे युद्ध करना अनुचित नहीं, परन्तु हमें यह भली भाँति सोच लेना चाहिये, कि हम अपनी चेष्टामें सफल मनोरथ होंगे या नहीं। यदि हम इन वैज्ञानिकोंकी बात पर ध्यान न दें और स्वच्छन्दता पूर्वक प्रजोत्पत्ति करते रहें, तो हमें यह देखना चाहिये, कि उससे, हमें क्या लाभ या हानि होगी। वैज्ञानिकोंके

कथनानुसार अधिक बच्चे उत्पन्न होने पर निम्नलिखित कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।

(१) मातापिताका स्वास्थ्य और यौवन नष्ट हो जाता है।

(२) रोगी और दुर्बल सन्तान उत्पन्न होती है।

(३) बच्चे अधिक हो जानेके कारण उनका समुचित लालन पालन नहीं हो पाता।

(४) धनाभावके कारण बच्चोंको खिलानापिलाना और पढ़ाना लिखाना कठिन हो जाता है। फलतः प्रजा दिन प्रति दिन हीन होती चली जाती है।

(५) बच्चोंकी बाढ़, धनका अभाव और स्वास्थ्यकी खराबीके कारण जीवन भार हो जाता है—इत्यादि।

इन सब बातों पर विचार करनेसे मालूम होता है, कि अधिक सन्तान होनेसे जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, वे खासकर तीनही हैं—माता पिताका स्वास्थ्य नष्ट होना, बच्चोंका दुर्बल होना और धनाभावके कारण जीवन भार मालूम होना। अन्यान्य बातें इन्हीं तीनोंके अन्तर्गत हैं, अतः हम केवल इन्हींपर विचार करेंगे।

मातापिताका स्वास्थ्य—प्राच्य और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन सभी वैज्ञानिकोका मत है, कि अधिक सन्तान होनेसे मातापिताका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

पाश्चात्य विद्वानोंने इसका प्रतिकार करनेके लिये कई उपाय खोज निकाले हैं। हम गर्भाधानके अध्यायमें पहले ही कह चुके हैं, कि गर्भाशय तक वीर्य पहुंचने और रजोडिम्बके साथ शुक्रकीटका संयोग होनेपर ही गर्भस्थिति होती है। वैज्ञानिकोंने इस कार्यमें बाधा देनेके लिये कई प्रकारकी रबरकी थैलियाँ तैयार की हैं, जिनको पहन लेनेसे शुक्रकीट निर्दिष्ट स्थानतक नहीं पहुंच सकते। इसके अतिरिक्त ऐसी शस्त्र क्रियायें भी खोज निकाली गयीं हैं, जिनके प्रयोगसे स्त्रियोंकी गर्भधारण शक्ति नष्ट हो जाती है। इन सब बातोंमें वैज्ञानिकोंका यही उद्देश्य है, कि स्त्री पुरुष निःसंकोच भावसे सहवास कर सकें, परन्तु उन्हें सन्तान हो।

किन्तु हम इन उपायोंका अवलम्बन करना ठीक नहीं समझते। रबरकी थैलियां व्यवहार करनेपर भी इस बातका विश्वास नहीं दिलाया जा सकता, कि गर्भ संचार हो ही नहीं सकता। व्यवहारमें जरा भी गड़बड़ होते ही गर्भ रह जाता है। साथ ही अनेक अवस्थाओंमें उनके व्यवहारसे रोग भी उत्पन्न हो जानेकी सम्भावना रहती है। फिर भी यदि हम मान लें, कि उनकी सब बातें जैसी वे कहते हैं, वैसी ही हैं और उनके कथनानुसार प्रक्रियायें करने पर गर्भस्थिति नहीं हो सकती, तो प्रश्न यह है, कि ऐसा क्यों

किया जाय ? क्या इससे स्वास्थ्य और यौवन सुरक्षित रह सकता है ?

भारतीय वैज्ञानिकोंका तो अटल सिद्धान्त है, कि "मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्"। मनुष्यके शरीरमें वीर्य ही सार वस्तु है। उसीकी रक्षापर स्वास्थ्य, यौवन और बल बुद्धि अवलम्बित है। जब उसीकी रक्षा न होगी तब स्वास्थ्य कैसे सुरक्षित रह सकता है ? पाश्चात्य वैज्ञानिक केवल गर्भ रोकनेका उपाय बतलाते हैं, परन्तु उससे वीर्यपातके कारण स्वास्थ्यकी जितनी हानि सम्भव है, उसमें तो किसी प्रकारकी कमी हो ही नहीं सकती। हां, स्त्रियोंको कुछ लाभ अवश्य हो सकता है। उन्हें गर्भ-धारण और प्रसवके कारण जो कष्ट उठाना पड़ता है, वह न उठाना पड़ेगा। इससे उनके स्वास्थ्यमें कुछ वृद्धि हो सकती है। परन्तु पुरुषोंकी दशा अधिक शोचनीय हो जायगी। न उन्हें गर्भसंचार होनेका भय रहेगा, न गर्भा-वस्थाके कारण गर्भिणीसे ही दूर रहना पड़ेगा। ऐसी दशामें वे अपेक्षा कृत अधिक वीर्य नष्ट कर अपना स्वास्थ्य खो बैठेंगे। पाश्चात्य देशोंकी महिलायें इस अवस्थामें आनन्द मना सकती हैं, परन्तु पतिको ही अपना जीवन सर्वस्व माननेवाली भारतीय महिलायें स्वयं स्वस्थ रहना

और पतिको रोगी बनाये रखना, कदापि नहीं पसन्द कर सकतीं।

भारत और युरोपकी सामाजिक परिस्थितिमें भी जमीन आसमानका अन्तर है। युरोपकी सभी बातोंका अनुकरण हमारे लिये एक समान लाभदायी नहीं हो सकता। कृत्रिम उपायों द्वारा गर्भावरोध करना हिन्दू-समाजके लिये नितान्त हानिकर है। यहांके लिये ऋषि मुनियोंके ही नियम अधिक लाभदायी और उपयुक्त हैं। उन्होंने स्वास्थ्य रक्षा और गर्भावरोधके लिये इन्द्रिय निग्रह किंवा ब्रह्मचर्य धारण करनेका आदेश दिया है। इससे वीर्य रक्षा, स्वास्थ्य रक्षा और गर्भावरोध सभी कुछ हो सकता है। केवल क्षणिक आनन्दके लिये वीर्यका अपव्यय करना किसी तरह ठीक नहीं। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका तरीका काममें लानेसे न केवल वीर्य ही नष्ट होता है, बल्कि निरंकुशता और व्यभिचार भी बढ़ सकता है, इसीलिये वह भारतवासियोंके लिये वाञ्छनीय नहीं।

अब रही हीन सन्तान और धनाभावकी बात। यह दोनों प्रत्येक भारतवासीके लिये परम उपयोगी और विचारणीय प्रश्न हैं। वैज्ञानिकोंका यह कथन बिलकुल ठीक है, कि हम लोग इसीतरह सन्तानोत्पत्ति करते रहे, तो संसार

अल्पजीवी और दुर्बल मनुष्योंसे पूरित हो जायेगा और प्रकृति बड़ी निर्दयताके साथ उनका संहार कर डालेगी।

भारतवासियोंकी सन्तान कितनी हीन होती चली जा रही है, इस सम्बन्धमें कुछ कहना ही व्यर्थ है। बालकोंकी मृत्यु संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। प्रतिशत पचास बच्चे भी अपना शैशवकाल अतिक्रमणकर संसारकी हवा नहीं खा सकते। बहुतेरे जन्मते ही मर जाते हैं और बहुतेरे कुछ दिनतक संसार यात्रा करनेके बाद अपनी इहलोक लीला समाप्त करते हैं। जो जीवित रहते हैं, उनमें स्वस्थ और हृष्टपुष्ट बच्चे बहुत ही कम दिखाई देते हैं। जिधर ही देखिये उधर ही रोगी, दुर्बलेन्द्रिय और अस्थि-कंकालवत् क्षीणकाय बचोंका दल दृष्टिगोचर होता है। उनका न केवल शरीर ही दुर्बल होता है, बल्कि मनकी दशा और भी खराब होती है। साहस, धैर्य, निर्भीकता आदि सभी गुणोंका उनमें अभाव पाया जाता है। बुद्धि इतनी मोटी होती हैं, कि वे बिना किसीके बताये आपोआप कोई काम ही नहीं कर सकते। इससे अधिक हीनावस्था और क्या हो सकती है? ऐसे बच्चे अपना और अपने देशका श्रेय साधन कैसे कर सकते हैं? उन्हें अपनी जीविकाहीके लिये जब पराया मुह ताकना पड़ता है, तब

उनके द्वारा कोई महत्कार्य होनेकी आशा कैसे रक्खी जा सकती है ?

बच्चोंकी यह हीनता मातापिताकी हीनता पर ही अवलम्बित रहती है। बच्चोंको भला या बुरा बनाना यह उनके हाथ की बात है। जो यथानियम सन्तान उत्पन्न करते हैं, उनके बच्चे भले ही होते हैं, परन्तु जो लोग बिना किसी बातका विचार किये, इस कार्यको करते हैं, उनकी सन्तान भी वैसी ही हीन होती चली जाती है। दुर्भाग्यवश भारतवासियोंकी आर्थिक स्थिति भी कम शोचनीय नहीं। यहां काम करनेवालोंकी अधिकता और कामकी कमी रहती है। लोगोंको नौकरीके अतिरिक्त और कोई व्यवसाय सूझता ही नहीं। पढ़े लिखे और अनपढ़, शिक्षित और अशिक्षित—सभी सेवा वृत्तिके लिये लालायित रहते हैं। नौकरीके लिये कहीं एक स्थान खाली होता है, तो सत्तर अर्जियां जा पड़ती हैं। एक मनुष्य जिस कामको ५० रुपयेमें करता है, वही काम दूसरा मनुष्य ४० हीमें कर देनेको तैयार रहता है। इन सब बातोंके कारण जीविकाकी समस्या दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही है। एक मनुष्यको अपनी आमदनीसे अपने परिवारका निर्वाह करना बड़ा ही कठिन हो जाता है। परिवारकी जाने

दीजिये, केवल पति पत्नी—दो जन भी भर पेट दोनों वक्त भोजन नहीं कर सकते। ऐसी दशामें जब उनके यहां एकके बाद एक सन्तान उत्पन्न होने लगती है, तब उनका जीवन न जाने कितना अशान्त और कितना दुःखी हो जाता है। बच्चोंके लिये पुष्टिकर भोजन और आवश्यक वस्त्रोंका जुगाड़ करना भी उनके लिये असम्भव हो जाता है। मातापिता स्वयं एक वक्त खाते हैं और अपने बच्चोंको दोनों वक्त खिलाते हैं। स्वयं फटे कपड़ोंमें गुजारा करते हैं, परन्तु उन्हें अच्छे कपड़े पहनाते हैं। किन्तु इतनेहीसे माता-पिताके कर्तव्यकी इति श्री नहीं हो जाती। उनके शिरपर बच्चोंको पढ़ा लिखा कर योग्य बनानेकी जिम्मेदारी भी रहती है। परन्तु यह कार्य एकदम उनकी शक्तिके बाहरका होता है। उच्च शिक्षाका देना तो दूर रहा, वे उन्हें अक्षर ज्ञानकी प्रारम्भिक शिक्षा भी नहीं दिला सकते। यही कारण है, कि आज भारतमें लाखों मनुष्य ऐसे हैं, जो काला अक्षर भैंस बराबर समझते हैं। जहां भोजन हीकी समस्या बड़ी कठिनाईके साथ हल होती है, वहां शिक्षा दीक्षाका प्रश्न कैसे हल हो सकता है? एक आध सन्तान हो, तो उसके लिये किसीतरह प्रबन्ध किया भी जा सकता है, परन्तु यहां तो एकके बाद एक सन्तान उत्पन्न होने लगती है और देखते ही

देखते उसका नम्बर आधे या चौथाई दर्जन पर जा पहुंचता है। यह वृद्धि कबतक होती रहेगी, इसका भी कोई निश्चय नहीं होता। ऐसी दशामें निर्धन माता पिताओंके लिये उनके भोजन और शिक्षा दीक्षाका प्रश्न बड़ा ही विकट हो पड़ता है। वे बच्चेकी अवस्था आठ दश वर्षकी होते ही, यह सोचने लगते हैं, कि अब इसे किसी व्यवसायमें लगा दिया जाय तो अच्छा है। नौकरीके अतिरिक्त और व्यवसाय उन्हें सूझ ही कैसे सकता है? प्रायः सभी व्यवसायों में पूंजी और बुद्धिबलकी आवश्यकता पड़ती है। इन दोनों का वहां पहलेसेही अभाव रहता है, अतः बच्चे भी उसी छोटी अवस्थामें जब उनके शिक्षा प्राप्त करनेका समय होता है, दासता और सेवा वृत्तिकी विषम शृङ्खलासे जकड़ दिये जाते हैं।

शारीरिक और आर्थिक अवस्था हीन होनेपर भी लोग जब सन्तानोत्पत्तिका कार्य अनवरत रूपसे करते रहते हैं और संसार अयोग्य मनुष्यों से पूरित हो जाता है, पृथिवी उनके भारसे व्याकुल हो त्राहि त्राहि करने लगती है, तब प्रकृति संहारका भयानक शस्त्र धारण कर सृष्टिको परिमित बना देती है। दुर्भिक्ष, जलप्रलय, प्लेग प्रभृति रोग और दुर्घटनाओं का प्रादुर्भाव इसी लिये होता है। यों

तो संसारमें जन्मग्रहण करनेवाले समस्त प्राणियोंको एक न एक दिन मृत्यु शय्यापर शयन करना ही पड़ता है, परन्तु जब प्राकृतिक वार होता है, तब सब लोगोंकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होती—जैसे गेहूंके साथ उसमें रहनेवाला घुन भी पिस जाता है, उसी तरह अयोग्य और हीन मनुष्योंके साथ न जाने कितने योग्य और गुणी मनुष्योंका भी सर्वनाश हो जाता है। प्रकृति जिससमय नाश करनेके लिये खड्गहस्त हो मैदानमें उतरती है, उस समय वह भले बुरे और योग्य अयोग्यका ध्यान नहीं रखती। जो उसकी चपेटमें पड़ जाता है, उसीका अन्त हो जाता है। इससे देशका बड़ा अनिष्ट होता है। जिन मनुष्योंकी आवश्यकता रहती है, वे चल बसते हैं और जो अकर्मण्य, निरुद्यमी और आलसी होते हैं, वे पड़े रहते हैं। इसी दुरवस्थासे त्राण पानेके लिये इस समय बड़े बड़े वैज्ञानिक भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यदि मनुष्य नियमानुसार सन्तानोत्पत्तिका कार्य करे, तो वह अच्छी सन्तान उत्पन्न कर सकता है और यदि अपनी आर्थिक दशापर ध्यान रखते हुए यह कार्य करे तो उन्हें शिक्षित और योग्य भी बना सकता है। हीन सन्तानकी वृद्धि रोकनेकी अपेक्षा उत्तम

सन्तान उत्पन्न करना अधिक अच्छा है। जब उत्तम सन्तान उत्पन्न होने लगेगी तब हीन सन्तान आप ही आप कम हो जायेगी। इसलिये लोगोंको गर्भावरोध न कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये। उत्तम सन्तान तभी हो सकती है, जब यह काम यथानियम सम्पन्न हो और सन्तानका यथोचित लालन पालन और समुचित शिक्षा दीक्षाका प्रबन्ध किया जा सके। मातापिताकी शारीरिक और मानसिक अवस्था पर बच्चोंका स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शीलस्वभाव और गुण प्रभृत्ति बातें निर्भर करती हैं और आर्थिक अवस्थापर उनकी शिक्षा दीक्षाका आधार रहता है। इसलिये यदि मातापिताकी शारीरिक मानसिक और आर्थिक दशा अच्छी हो तों उन्हें सन्तानोत्पत्तिके कार्यमें प्रवृत्त हो देशकी जन-संख्यामें वृद्धि करनी चाहिये अन्यथा ब्रह्मचर्य किंवा इन्द्रिय निग्रह द्वारा हीन सन्तानकी वृद्धि रोकना ही उनके और इस अभागे देशके लिये श्रेयस्कर है। हर हालतमें उतने ही बच्चे उत्पन्न करने चाहिये जितनोंको भली भांति पढ़ा लिखाकर योग्य बनाया जा सके और उनकी या अपनी जीवन यात्रा दुःखमय न हो पड़े। इससे अधिक बच्चे उत्पन्न करना, प्रकृतिके लिये संहारकी सामग्री प्रस्तुत करना है। हीन सन्तानकी वृद्धि माता पिता, देश और समस्त संसारके

लिये हानिकर है, अतः इसपर नियन्त्रण रखना मनुष्यमात्रका परम कर्तव्य है। यह कार्य सुसन्तानकी वृद्धि द्वारा ही सुचारुरूपसे सम्पन्न हो सकता है, अतः अगले अध्यायमें हम इसी विषयपर विचार करेंगे।

१४

उत्तम सन्तान

गत अध्यायमें हम बतला चुके, कि वंश-वृद्धि करना मनुष्यमात्रका परम कर्तव्य है, परन्तु उसे ऐसी सन्तान न उत्पन्न करनी चाहिये, जो दीन-हीन, अल्पायु, निस्तेज, दुर्बलेन्द्रिय और गुणहीन हो। ऐसे बच्चे संसारमें भाररूप हो पड़ते हैं और प्रकृति उन्हें असमयमें ही कालके कराल-गालमें झोंक देती है। प्रत्येक मनुष्यको ऐसी सन्तानकी वृद्धि रोकनेमें सर्वदा यत्नशील रहना चाहिये। यह वृद्धि दो तरहसे रुक सकती है—(१) उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेसे और (२) इन्द्रियनिग्रहकर सन्तानोत्पत्तिका कार्य रोक देनेसे।

भारतवर्षमें ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है, जो सन्तति शास्त्रको जानते हैं और यह मानते हैं, कि भली या

बुरी सन्तान उत्पन्न करना अपने हाथकी बात है। अधिकांश भारतवासी सन्तानको ईश्वरकी देन समझते हैं। उनकी धारणा है, कि सन्तान देना न देना और उसे भली या बुरी बनाना ईश्वरके अधिकारकी बात हैं। अपठित किंवा अशिक्षित ही नहीं, बल्कि अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे मनुष्योंके मुखसे भी उपरोक्त प्रकारके उद्गार निकलते हुए सुनाई देते हैं। परन्तु वैज्ञानिकोने यह बात प्रमाणित कर दी है, कि भली या बुरी सन्तान उत्पन्न करना स्वयं मनुष्यके अधिकारकी बात है। वह चाहे तो भलीसे भली और चाहे तो बुरीसे बुरी सन्तान उत्पन्न कर सकता है।

जैसे अच्छा सूत तैयार करनेके लिये अच्छी रुई, निर्दोष चरखा और चतुर कातनेवालेकी आवश्यकता पड़ती है, जैसे अच्छासा खिलौना बनानेके लिये बढ़िया मिट्टी, तरह तरहके रंग और कुशल शिल्पी आदिकी जरूरत पड़ती है और जिस प्रकार अच्छा मकान बनानेके लिये बढ़िया ईंट, बढ़िया चूना और निपुण कारीगरोंकी आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी प्रकार अच्छी सन्तान उत्पन्न करनेके लिये सभी उपकरण अच्छेसे अच्छे होने चाहिये। जिस प्रकार अच्छे उपकरणोंके अभावसे अच्छी वस्तु नहीं तैयार होती, उसी तरह सन्तान भी अच्छी नहीं होती। किसानको अच्छी फसल-

काटनेके लिये न केवल अच्छा खेत, अच्छा बीज और अच्छे औजार आदि उपकरण ही जुटाने पड़ते हैं, बल्कि आदिसे अन्ततक उसकी परिचर्या भी करनी पड़ती है। पानीकी आवश्यकता पड़नेपर पानी और छायाकी आवश्यकता पड़नेपर छाया आदिका प्रबन्ध करना पड़ता है। यह सब करनेके बाद ही उसे अपने परिश्रमका फल मिलता है। यदि वह ज़रा भी कहीं चूक जाता है, तो सभी परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। सन्तानके सम्बन्धमें भी ठीक यही बात है। चतुर किसानकी तरह दम्पतियोंको भी यह कार्य सुचारुरूपसे बड़ी सावधानीके साथ सम्पादित करना पड़ता है। वीर्य, रज आदि उपकरण और आवश्यक परिचर्या जितने ही परिमाणमें अच्छी होती है, उतने ही परिमाणमें सन्तान भी अच्छी होती है। यदि उपकरण ठीक न हुए और समुचित परिचर्या न की गयी, तो दम्पतियोंका परिश्रम भी व्यर्थ हो जाता है। इसलिये उत्तम सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको सब बातोंपर भलीभाँति विचार करनेके बाद ही इस प्रवृत्तिमें पड़ना चाहिये।

जिस प्रकार कृषि-विज्ञानका ज्ञान किसानके लिये परमावश्यक होता है, उसी प्रकार दम्पतियोंको दाम्पत्य-विज्ञानका ज्ञान होना परमावश्यक है। बिना इस ज्ञानके वे अपने

जीवन-संग्राममें आगे बढ़ ही नहीं सकते। किंकर्तव्य-विमूढ़ हो पथभ्रष्ट हो जाना उनके लिये अनिवार्य एवम् अवश्यम्भावी है। इसलिये इस कर्ममें प्रवृत्त होनेवालोंको सर्वप्रथम इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। खेत, बीज और औजार अच्छे न होनेपर, केवल ज्ञानहीके सहारे किसानको जिस-प्रकार सफलता नहीं मिलती, उसी प्रकार उपकरण अच्छे न होनेपर दम्पतियोंको भी हताश होना पड़ता है। पिताका वीर्य, माताके रजोडिम्ब, दोनोंको शारीरिक स्वस्थता, सन्तानोत्पत्तिकी योग्यता, अंगोंकी परिपूर्णता और पुष्टता—प्रभृति इसके उपकरण हैं। यह जितने ही अच्छे होंगे, सन्तान भी उतनी ही अच्छी होगी। ठीक समयपर न बोनेसे बहुधा बीज अंकुरित ही नहीं होता और यदि अंकुरित होता है, तो वह सुफल नहीं देता। ठीक उसी तरह दम्पतियोंको उचित समयपर गर्भाधान करना होता है। असमयमें सहवास करनेपर या तो गर्भसञ्चार ही नहीं होता और होता है, तो रुग्ण और दुर्बलेन्द्रिय सन्तान उत्पन्न होती है। इसलिये अच्छी सन्तानकी इच्छा रखनेवालोंको ऋतु-काल और अपनी अवस्था प्रभृति विषयोंपर भी ध्यान रखना चाहिये। बीज बोनेके बाद भी किसान अन्ततक जिसप्रकार उसकी परिचर्यामें संलग्न रहता है, उसी प्रकार दम्पतियोंको

भी सन्तान भूमिष्ठ होनेतक आवश्यक परिचर्या करते रहना चाहिये। यह सब करनेपर भी यदि सन्तान अच्छी न हो, तो दैवके शिर दोषारोपण कर लोग खुशीसे सन्तोष मान सकते हैं, इसके पहले कदापि नहीं।

संसारमें बहुधा यही दिखाई देता है, कि बच्चोंका रंग मातापिताके वर्णानुसार ही होता है। कन्यापर माताके रंगका और पुत्रपर पिताके रंगका विशेष प्रभाव पड़ता है। परन्तु यह कोई अटल नियम नहीं है। यह भी देखा गया है, कि काले मातापिताओंके बच्चे गोरे और गोरे मातापिता-ओंके बच्चे काले उत्पन्न होते हैं। गुणके सम्बन्धमें भी ऐसे ही कतिपय नियम हैं। उन नियमोंके अनुसार ही बच्चोंमें सद्गुण या दुर्गुण दिखाई देते हैं। इस विषयको अधिक स्पष्ट करनेके लिये, निम्नलिखित उदाहरण ही पर्याप्त होंगे।

स्पेन देशकी एक अमीरजादीके शयनगृहमें एक इथोपियन मनुष्यका चित्र टँगा था। इथोपियन लोगोंका रंग बड़ा ही काला होता है। वह अमीरजादी कौतूहलवश उसे बारंबार देखा करती थी। उसके मनपर उसका बड़ा प्रभाव था। जब वह गर्भवती हुई, तब भी बराबर उसे देखती रही। यथासमय जब उसने पुत्र प्रसव किया, तब

लोगोंने आश्चर्यके साथ देखा, कि उस बालकका वर्ण ठीक उस एथोपियनके समान काला है।

एक अन्य युरोपीय महिलाके यहाँ एक आफ्रिकनका चित्र था। आफ्रिकनोंके बाल जन्मसे ही उलझनदार और घुंघराले होते हैं। युरोपियन लोग वैसे बाल बहुत पसन्द करते हैं। वह महिला भी उन्हें पसन्द करती थी और बारंबार देखा करती थी। इस क्रियाका प्रभाव उसके गर्भ-पर पड़ा। उसने जिस बालकको जन्म दिया, उसके बाल ठीक उस आफ्रिकनके समान घुंघराले और उलझनदार थे।

एक इथोपियन रानीने इसीप्रकार एकवार एक गोरे बालकको जन्म दिया था। जाँच करनेपर मालूम हुआ था, कि उस रानीको उज्ज्वल वर्ण और उज्ज्वल चीज बड़ी प्रिय थीं। वह अहर्निश उन्हींका ध्यान करती थी। इसीलिये उसके पुत्रका वर्ण उज्ज्वल था।

बच्चोंके रूप रंग विषयक यह बात न केवल मनुष्योंमें ही पाई जाती है, बल्कि पशुओंमें भी देखी गई है। फौजके लिये जब एक ही रंगके घोड़ोंकी आवश्यकता होती है, तब गर्भाधानके समय उनके सामने बदामी या काले रंगके पड़दे टांग दिये जाते हैं। ऐसा करनेसे सबसे सब बछेड़े उसी रंगके उत्पन्न होते है।

डाक्टर पी० एफ० सिक्स्टने इस बातको एकवार भली-भाँति अजमाया था। उन्होंने कई खरगोश पाल रक्खे थे। वे खरगोश जिस स्थानमें रहते थे, उस स्थानके चारोंओर उन्होंने नीले रंगके पड़दे लगा रक्खे थे। जमीनपर भी नीले रंगकी चटाई बिछी हुई थी। खरगोश सारादिन उसी चटाईपर दौड़ा करते थे। वे जिधर ही देखते, उधर ही उन्हें नीला रंग नजर आता था। अंतमें जब दो खरगोशोंने बच्चे दिये तब देखा गया, कि उन बच्चोंका रंग नीला है। हम समझते हैं कि पाठकोंको अब इसका कारण बतलानेकी आवश्यकता नहीं रही।

ईसाइयोंके धर्मग्रंथ बाईबलमें भी इसका एक उदाहरण अंकित है। उसमें लिखा है, कि लेवलने एकवार याकुबको धोखा दिया। उसके बदलेमें उसने याकुबको वचन दिया, कि यदि वह सात वर्षतक उसके भेंड़ बकरे चरा दे, तो वह उसे अपनी एक कन्या विवाह देनेके अतिरिक्त, उतने समयमें उन भेड़ोंके जितने बुंदकीदार बच्चे होंगे, वे सब उसे दहेजमें दे देगा। लेवलने समझ रक्खा था, कि सात वर्षमें शायद ही दोचार ऐसे बच्चे हों। परन्तु याकुबने एक ऐसी युक्ति खोज निकाली, जिससे सब बच्चे बुंदकीदार ही उत्पन्न हुए और लेवलको अपने कर्मका यथोचित दण्ड भी मिला।

सर्वप्रथम याकुबने उन भेंड़ बकरोंको पानी पिलानेके लिये ऐसे बरतन तैयार कराये, जो सब ओरसे बुंदकीदार थे। बादको उसने मादाओंको अलगकर एक स्थानमें बांध दिया। दिनभर बांध रखनेपर, जब वे अत्यन्त तृषाकुल हुईं तब उसने उन्हें नरोंके बीचमें उन्हीं बुंदकीदार बर्तनोंमें पानी पीनेके लिये छोड़ दिया। चित्तकी एकाग्रताके कारण वे बुंदकियाँ मादाओंके मनमें बस गयीं। निदान उस समय गर्भाधान होनेपर जितनी बकरियोंने बच्चे दिये वे सब बुंदकीदार हुए। याकुबने यही क्रम अंततक जारी रक्खा और आसानीके साथ लेवलसे बाजी मार ली।

मनपर प्रभाव पड़नेसे बच्चोंका रंग इसी प्रकार बदल जाता है। इस कथनकी पुष्टिमें अभी और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। डाक्टर फाउलर लिखते हैं, कि एक परम-विषयी और लम्पट पुरुषने एक कंगालस्थितिकी सुन्दरीके साथ विवाह किया। उसके साथ ऐसी शर्त थी, कि वह उसे कभी कष्ट न देगा। साथ ही यह भी स्थिर हुआ था, कि यदि वह पुरुष किसी दूसरी स्त्रीसे सम्बन्ध रक्खे, तो उसमें उस स्त्रीको कोई आपत्ति न होगी। थोड़े दिनोंके बाद उस पुरुषने एक दाई नौकर रक्खी। दाईका रंग काला परन्तु अवस्था तरुण थी। उस पुरुषने उसके साथ

अपना सम्बन्ध स्थापित करनेका विचारकर उसे बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह इतनी धर्मपरायणा थी, कि लेश भी विचलित न हुई। उसने अनेक प्रकारसे प्रयत्न किये, परन्तु सभी व्यर्थ प्रमाणित हुए। अंतमें एकदिन शामको उसने उस दाईसे बड़ा ही आग्रह किया, परन्तु वह किसी प्रकार उसकी इच्छा पूर्ण करनेको तैयार न हुई। पुरुष जब वहाँसे निराश हुआ, तब उसी उत्तेजित दशामें अपनी स्त्रीके पास गया। सहवास करनेपर स्त्री गर्भवती हो गयी। यथा समय उसने जो पुत्र प्रसव किया उसका रूप रंग ठीक उस दासीके समान था। जो लोग अनभिज्ञ थे, वे उसे उस दासीका ही पुत्र समझते थे। इस उदाहरणमें यह बात दिखाई देती है, कि मातापिताका वर्ण उज्ज्वल होने पर भी पिताकी मनःस्थितिके कारण बालक श्यामवर्णका उत्पन्न हुआ। पिताकी मनःस्थितिका बालकके वर्णपर पूरा पूरा प्रभाव पड़ा।

विद्वान डाक्टर लौ ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं, कि एक सुन्दर और सुनहले केशवाले युरोपियनने एक ब्राझेलियन सुन्दरीके साथ विवाह किया। परन्तु उस स्त्रीसे उसे एक भी सन्तान न हुई। ब्राझेलियन सुन्दरीके शरीर और केशोंका रंग काला था। दैवात् बीस

वर्षके बाद उसका शरीरान्त हो जाने पर उसने एक युरोपियन सुन्दरीका पाणि ग्रहण किया। उस स्त्रीसे उसे जो बालक हुआ, उसका डीलडौल, आकारप्रकार और रूप रंग आदि सभी बातें उस ब्राफेलियन सुन्दरीके समान थीं। इस बच्चेके माता पिता अंग्रेज होने पर भी उन्हें ब्राफेलियन जैसा पुत्र हुआ, इसका कारण यह था, कि वह अँग्रेज अपनी पूर्व पत्नीको, जिसकी मृत्यु बीस वर्ष पहले हो चुकी थी, बड़ा ही प्रेम करता था। जब जब वह अपनी नव-विवाहिता वधूके साथ सहवास करता, तब तब उसे अपनी स्वर्गवासिनी पत्नीका स्मरण हो आता था। इसी मनः-स्थितिके कारण उसे वैसी सन्तान हुई।

एक सज्जन गाने बजानेमें बड़े ही निपुण थे। उन्हें संगीत विद्याका इतना शौक़ और उसपर इतना अनुराग था, कि वे इसे न जानने वालोंको पशुवत् ही समझते थे। दैवयोगसे उन्हें जो स्त्री मिली, वह इस विषयसे बिलकुल ही अनभिज्ञ थी। उसे संगीत विद्याका एक अक्षर भी मालूम न था। जब उसने देखा, कि संगीत न जाननेवाले मनुष्य मेरे पतिको अप्रिय मालूम होते हैं, तब वह ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी, कि मेरे एक भी सन्तान न हो। ऐसा करनेका कारण यह था, कि वह समझती थी, कि मैं संगीत-

से अनभिज्ञ हूँ. अतः मेरे जो सन्तान होगी, वह भी ऐसी ही अनभिज्ञ होगी और इस विषयकी अनभिज्ञताके कारण पतिका उस पर प्रेम न होगा। कुछ दिनोंके बाद उसे संगीत सीखनेकी इच्छा हुई। पतिने उसे इसके लिये उत्साहित किया। निदान वह गाने बजानेकी चेष्टा करने लगी। जैसे बनता वैसे गाया बजाया करती। इसी स्थितिमें उसे गर्भ रह गया। यथासमय उसने एक पुत्रको जन्म दिया। कुछ वर्षोंके बाद पुनः एक पुत्र हुआ। उनके बड़े होने पर देखा गया, कि वे अपने पितासे भी बढ़कर गायन वादनमें निपुण हैं। इस उदाहरणसे मालूम होता है, कि माता यद्यपि संगीत विद्यामें निपुण न थी, परन्तु निपुणता प्राप्त करनेकी उसके हृदयमें प्रबल इच्छा थी और उसी इच्छा शक्तिके कारण उसके पुत्र संगीत कलामे निपुण हुए।

डाक्टर केलोग एक और उदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं, कि रोम शहरका एक न्यायाधीश ठींगना, कुरूप और कुबड़ा था। उसके यहाँ जिस बालकका जन्म हुआ, वह भी वैसा ही कुरूप और ठींगना था। उसे देख कर न्याया-धीशको बड़ा क्षोभ हुआ। वह अपने मनमें कहने लगा कि यदि मेरे सब बच्चे ऐसे ही हुए तो मेरा वंश ही खराब

हो जायगा। अतः इनके रूप रंग बदलनेकी चेष्टा करनी चाहिये। निदान वह गैलन नामक एक विख्यात डाक्टरके पास गया और उससे सलाह पूछी। डाक्टरने सलाह दी, कि अपने शयन गृहमें शय्याके आस पास सुन्दरसे सुन्दर तीन पुतले सजा दो—एक पैताने, एक शय्याकी दाहिनी ओर और एक बायीं ओर रहे। ऐसा करवानेका एकमात्र उद्देश्य यही था, कि न्यायाधीशकी स्त्री हरवक्त उन पुतलोंको देख सके और उनका उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़े। न्यायाधीशने डाक्टरकी आज्ञा शिरोधार्य की। फल यह हुआ, कि उसकी दूसरी सन्तान आशातीत सुन्दर हुई।

लोग आमतौरसे मानते हैं, कि माता पिताके समान ही उनकी सन्तान होती है, परन्तु यह बात जिस साधारण ढंगसे कही जाती है उतनी साधारण नहीं है। उपरोक्त उदाहरणोंसे स्पष्ट मालूम होता है, कि माता पिता चाहे जैसे हों परन्तु गर्भाधान और गर्भावस्थाके समय उनकी जैसी मनस्थिति होगी, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। सन्तानके रूप रंग और गुणोंपर माता पिताकी तत्कालीन मनःस्थितिका गहरा प्रभाव पड़ता है। यही कारण है, कि एक ही मा बापके दो लड़कोंमेंसे एक भला और दूसरा

बुरा, एक विद्वान तो दूसरा मूर्ख, एक सद्गुणी और दूसरा दुर्गुणी उत्पन्न होता है।

सन्तानको सुन्दर और सद्गुणी बनानेकी जिम्मेदारी पिताकी अपेक्षा माताके शिर पर विशेष रहती है। पिता तो गर्भाधान कर अलग हो जाता है। उसकी मनःस्थितिका प्रभाव केवल उसी समय पड़ता है, परन्तु माता तो अलग नहीं हो सकती। उसे न केवल गर्भाधानके समय ही अपनी मनःस्थिति ठीक रखनी चाहिये, बल्कि जबतक गर्भ भूमिष्ट न हो तब तक सावधान रहना चाहिये। क्योंकि जब तक बच्चा गर्भमें रहता है, तबतक उसके आचार विचारोंकी उस पर असर पड़ती है। अपने यहाँ यह बात प्रसिद्ध है कि वीर अभिमन्युने गर्भावस्थामें ही चक्रव्यूह भेदनकी शिक्षा प्राप्त की थी। लोग इस बातको कपोल कल्पित भले कहें, परन्तु उपरोक्त उदाहरणोंमें जो वैज्ञानिक नियम दृष्टिगोचर होता है, वह हमें यह बात स्वीकार करनेके लिये बाध्य करता है, कि अवश्य अभिमन्युको गर्भमें शिक्षा मिली होगी। अभिमन्युमें व्यूह भेदनकी जो निपुणता देखी गई वह गर्भस्थ हके समय माताकी मनस्थितिके ही कारण प्राप्त हुई थी। परन्तु वह शिक्षा उसे कब दी गई थी? एकदम अन्तिम समय। ठीक उस समय जब प्रसव काल उपस्थित था।

शिक्षा पूर्ण होते न होते तो अभिमन्युका जन्म भी हो गया। इसीलिये कहते हैं, कि गर्भके भूमिष्ट होने तक माताको सावधान रहना चाहिये, अपनी मनःस्थिति ठीक रखनी चाहिये और भावी सन्तानको सुन्दर और गुणवान बनानेकी चेष्टामें संलग्न रहना चाहिये।

गर्भावस्थामें माताकी मनस्थितिका गर्भस्थ बालक पर कितना प्रभाव पड़ता हैं, यह वीर नैपोलियनके उदाहरणसे भी जाना जा सकता हैं। नैपोलियन जब गर्भमें था, तब उसकी माता अपने पतिके साथ युद्धक्षेत्रमें थी। युद्ध सम्बन्धी बातोंमें बहुधा वह भाग भी लेती थी। उसे घोड़े पर बैठ, हवा खानेका बड़ा शौक था। वह जैसी चतुरा और चपला थी वैसी ही शक्ति सम्पन्ना और बहादुर भी थी। वह भयानक स्थानोंमें भी अपने पतिका साथ न छोड़ती थी। संकटके समय साहस करनेमें उसे लेश मात्र भी भय किंवा संकोच मालूम न होता था। बल्कि ऐसे कार्य करनेमें उसे बड़ा आनन्द आता था। उसके पतिकी भी यही स्थिति थी। इसी-स्थितिमें गर्भाधान और गर्भ पोषण हुआ। फलतः नैपोलियन जैसे परम प्रतापी, अतुल विक्रमी, साहसी, निडर और महत्वाकांक्षी नररत्नका जन्म हुआ। गर्भावस्थामें माताकी शारीरिक-

और मानसिक स्थितिका पर गर्भ कैसा प्रभाव पड़ता है, इसके लिये यह एक ही उदाहरण पर्याप्त है।

आजकलके माता पिताओंको इस ओर ध्यान देना परमावश्यक है। जो माता पिता सदाचारी, स्वधर्मपरायण, विद्याविलासी, दयार्द्र और परोपकारी होते हैं, उन्हें वैसी ही सद्गुणी सन्तानकी प्राप्ति होती है। अथ च जो माता पिता विषय लम्पट, अधर्मी, कुकर्मी और अज्ञानी होते है उनकी सन्तान उन्हींके अनुरूप होती है। बालकोंके समस्त दोष और गुण माता पिता पर ही अवलम्बित हैं।

सुन्दर और सद्गुणी सन्तान किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है, इसके लिये उपरोक्त उदाहरण ही पर्याप्त हैं, तथापि कुछ आवश्यक बातें हम और भी अंकित कर देना उचित समझते हैं संसारका यह अटल नियम है, कि सुन्दर और उज्ज्वल वस्तुओंकी ओर मनुष्यकी दृष्टि सर्व प्रथम आकर्षित होती है। सुन्दर वस्तु मनुष्यके हृदयमें जितनी जल्दी प्रभाव जमा लेती है, उतनी जल्दी बुरी वस्तु नहीं जमा सकती। मान लीजिये, कि एक मनुष्यके दो स्त्रियाँ हैं। एकका रंग गोरा और दूसरीका काला है। ऐसी स्थितिमें यह निश्चित है, कि सर्व प्रथम पुरुषका हृदय गोरी स्त्रीकी ओर ही आकर्षित होगा। इसका कारण यह है, कि गोरा

रंग अधिक सुन्दर और नेत्र प्रिय मालूम होता है। विश्व विख्यात डार्विन साहबका कथन है, कि पुष्प और पशुओंकी सन्तानोंमें सफेद रंग आसानीके साथ उतर आता है। यदि गोरे मनुष्य काली स्त्रियोंके साथ सम्भोग करते हैं, तो बहुधा गोरे ही बालक उत्पन्न होते है। इसका प्रधान कारण यह है, कि गोरे रंगसे मनुष्य जातिका मन और हृदय विशेष रूपसे प्रभावान्वित होता है।

यदि सुन्दरता ही माता पिताके मनका लक्ष्य होती है, तो निःसन्देह उन्हें सुन्दर सन्तानकी प्राप्ति होती है। सुन्दर वस्तुओंके दर्शनसे, मनुष्य जातिमें बसी हुई सुन्दरताकी ओर विशेष ध्यान देनेसे, प्राकृतिक सुन्दरताका अवलोकन करनेसे, बारंबार सुन्दर चित्र देखनेसे मनुष्य स्वयं सुन्दर हो सकता है और अपनी सन्तानको सुन्दर बना सकता है। रोमके न्यायाधीश आदिके उदाहरण इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

अनेक बार हमारे देशकी स्त्रियाँ विकृत आकारको सन्तान प्रसव करती हैं। किसीके कपालमें आँख होती है, किसीकी खोपड़ीमें दाँत होते है, किसीके चार हाथ होते है और किसीके और कोई अंग कम या अधिक होते है। ऐसा क्यों होता है? केवल इसीलिये, कि उनके पिता और खासकर माताये गर्भाधानके समय अपनी मनःस्थिति ठीक

नहीं रखतीं। इसीलिये उन्हें विकृत सन्तान उत्पन्न होती है। माता पिताओंको चाहिये, कि गर्भाधान और गर्भावस्थाके समय अपने मनपर बुरी वस्तुओंका प्रभाव न पड़ने दें। विचित्र आकार-प्रकारके देव-देवियोंके दर्शन और कथा कहानीके श्रवणसे भी सन्तान विकृत हो सकती है।

डाक्टर ट्राल सुन्दर सन्तान उत्पन्न करनेके विषयमें लिखते हैं, कि जब मानसिक और शारीरिक स्थिति बहुत अच्छी हो तभी सुन्दर सन्तानका होना सम्भव है। इसलिये यदि सुन्दर सन्तान उत्पन्न करना हो, तो माता-पिताको अपना मन शांत, स्थिर और अच्छी दशामें रखना चाहिये। खानपानमें मर्यादा न उल्लंघन करनी चाहिये। हृदयको स्वच्छ रक्खे, शरीर मैला न रहे, और सब कार्यों में नियमितताका ध्यान रहे। जिस मनुष्यके अंग सम्पूर्ण, सुदृढ़ एवम् पुष्ट होते हैं, वही स्वस्थ रह सकते है। और स्वस्थ मनुष्य ही सुन्दर सन्तान उत्पन्न कर सकता है। अतः यह आवश्यक है, कि जो माता-पिता सुन्दर सन्तानका मुख देखना चाहें, उन्हें किसी प्रकारके दुर्गुण, दुर्व्यसन किंवा अन्य प्रकारोंसे अपना स्वास्थ्य नष्ट न करना चाहिये। डाक्टर ट्रालका कथन है, कि Parents who are in comparatively good condition when they cohabit for

reproduction, will frequently have children more beautiful than themselves, while on the otherhand parents who are in their worst condition when they beget children are represented in the next generation by specimens of the genus home more ill-looging than they are themselves" अर्थात् सन्तानोत्पत्तिके समय यदि माता पिताकी शारीरिक और मानसिक स्थिति अच्छी होती है, तो बहुधा उनकी अपेक्षा अधिक सुन्दर सन्तान उत्पन्न होती है, परन्तु इसके विपरीत सन्तानोत्पत्तिके समय यदि उनकी मनःस्थिति बुरी होती है, तो सन्तान उनकी अपेक्षा भी बुरी उत्पन्न होती है।

मनःस्थिति ठीक रहनेके लिये पति पत्नीमें अकृत्रिम प्रेम होना चाहिये। यदि दोनोंका मन नहीं मिला, पति पत्नीको अथवा पत्नी, पतिको नहीं चाहती, तो मनःस्थिति कैसे ठीक रह सकती है। ऐसी स्थितिमें उन दोनोंका शारीरिक सम्बन्ध भले ही स्थापित हो जाय—सन्तानोत्पत्ति भले ही होती रहे, परन्तु मनःस्थिति ठीक नहीं हो सकती। इसी प्रकार तामसी और नशीली वस्तुओंके सेवनसे भी चित्तकी अनस्थिरता बढ़ जाती है, अनेक दुर्भावोंका उदय होता है और सद्भाव लोप हो जाते हैं। इस स्थितिमें कोइ चाहे, कि हम चित्त

स्थिर रखें अथवा सुन्दर सन्तान उत्पन्न कर तो यह असम्भव नहीं तो कष्ट-साध्य अवश्य है। प्लुटार्क नामक एक विद्वान लिखते हैं कि I give this advice given by my predecessors, that no man should unit with his wife for issue except when sober, for those begotten while their parents are drunk more usually prove bibbers and drunkards" अर्थात् मैं वही शिक्षा दे रहा हूँ जो मुझे अपने पूर्वजोंकी ओरसे मिली है, कि किसी पुरुषका चित्त जब तक स्वस्थ किंवा सावधान न हो तबतक उसे सन्तानोत्पत्तिके लिये स्त्री-संग न करना चाहिये। क्योंकि उस समय यदि माता पिता दुर्व्यसनका सेवन करते हैं, मदिरा आदि पीते हैं, तो उनकी सन्तान उनसे बढ़ कर दुर्व्यसनी निकलती है।

हम पहले ही कह चुके, कि पिताकी अपेक्षा माताकी मनःस्थितिका गर्भपर अधिक प्रभाव पड़ता है। भली बुरी प्रकृति, रूप, गुण, बुद्धि, रंग और आकारप्रकार जैसा माताके मनमें बस जाता है, वैसा ही बच्चेमें उतर आता है। गर्भपर मनकी बातोंका प्रभाव पड़ते जरा भी देर नहीं लगती। यदि माता अन्धकारमें ही गर्भ धारण करे और दूसरे दिन या गर्भ भूमिष्ट होनेतक पतिको न देखे या स्मरण न करे तो

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि बालकका रूपरंग और गुण आदि बातें माताके ही समान होंगी। यदि कोई स्त्री पतिकी अपेक्षा अपनेको अधिक सुन्दर समझती है और अभिमान पूर्वक बारंबार दर्पणमें मुख देखा करती है, तो उसकी सन्तानमें पिताका गुण न आकर माताका ही गुण आता है। उपरोक्त दशामें यदि अपने पतिका भी यत्किञ्चित ध्यान करती है तो उसका प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि उसके पूर्वोक्त भावोंका प्रावल्य दूसरे भावोंकी अपेक्षा अधिक होता है। जो स्त्रियाँ अपने रूपके साथ ही पतिके रूप और गुणों पर भी मुग्ध रहती हैं, उनकी सन्तानमें माता और पिता दोनोंके गुण पाये जाते हैं।

कभी कभी इस नियमके कारण बड़ी विचित्र घटना भी घटित हो जाती है। घरमें यदि स्त्रीके भाई बन्धु, अड़ोसी पड़ोसी अथवा किसी अन्य पुरुषका आवागमन होता है और उसके रूप तथा गुणोंपर स्त्री मुग्ध होती है, किंवा मुग्ध न होने पर भी वारम्बार उसे देखती है, तो सन्तानका रूपरंग उसी पुरुषके समान हो जाता है। कभी कभी ऐसे पुरुषोंका आना पतिको पसन्द नहीं होता। वह चाहता है, कि फलाना मनुष्य हमारे यहाँ अधिक आया जाया न करे। परन्तु किसी कारण वश यदि उसका आवागमन बन्द नहीं होता और स्त्री

इस बातकी चिन्ता करने लगती है, कि पतिको इसके और मेरे बीचमें अनुचित सम्बन्ध होनेका सन्देह न हो जाय, तो उस चिन्ता और व्याकुलता एवम् उस पुरुषके दर्शनसे उसके गर्भस्थ बालकका रूपरंग और गुणादि वैसे ही हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें जब बालकका जन्म होता है, तब पिताका सन्देह दृढ़ हो जाता है और उसकी आकृति देख कर बाहरी लोग भी वैसा ही सन्देह करने लगते हैं। कभी कभी इसी बातके कारण पति पत्नीमें मनोमालिन्य हो जाता है अथवा पति स्त्रीको दुराचारिणी समझ, उसे त्याग देता है। इस प्रकार निर्दोष अबलाओंको केवल अपनी मनःस्थिति ठीक न रखनेके कारण भयंकर दंड भोग करना पड़ता हैं। उन्हें इस बातकी खबर ही नहीं होती, कि यह केवल उनकी जरा सी भूलका ही परिणाम है। यदि उन्हें इस बातकी शिक्षा दी जाय, यह बातें उन्हें भलीभाँति समझा दी जायें, तो वे ऐसा कदापि न करें। स्त्रियोंको चाहिये, कि इन बातोंको ध्यानमें रख, गर्भावस्थामें पर पुरुषका कदापि ध्यान न करें। स्वपतिमें ही अखण्ड ध्यान और उसीपर प्रेम रक्खें।

गर्भावस्थामें न केवल किसीका ध्यान करनेसे ही बच्चोंपर प्रभाव पड़ता है, बल्कि किसी आकस्मिक कारणसे उत्पन्न होनेवाले भय, चिन्ता, हर्ष और शोकका भी प्रभाव पड़ता

है। स्काटलैंडमें एक गर्भिणी स्त्री किसी जड़ पदार्थको देख कर भयभीत हो गयी थी, अतः उसने वैसे ही जड़वत् पुत्रको जन्म दिया था। ट्राय नगर निवासी जान बावीडाडस लिखते हैं, कि बोस्टनके एक धन कुबेरकी गर्भिणी स्त्री एक दिन एक तोतेको देख कर डर गयी थी, फलतः उसने जिस बच्चेको जन्म दिया, उसकी बोल चाल प्रायः तोतेके समान थी। इसी प्रकार एक स्त्रीने एक पलाऊ मेढेका पहले सिर कुचल डाला, बादको उसे उसपर बड़ी दया आई और उसने बड़ा पश्चाताप किया। इस घटनाका उसके हृदय पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा, कि उस गर्भस्थ बालककी छाती उसी मेढ़ेकी तरह दबी हुई और सिर बाहर निकला हुआ था। इसी प्रकार अपंग, अन्ध, लूले, लंगड़े तथा विचित्र आकार प्रकारके मनुष्योंकी ओर देखने या उनका ध्यान करनेसे भी गर्भस्थ बालकका आकार प्रकार वैसा ही हो जाता है, अतः स्त्रियोंको सदा सर्वदा सावधान रहना चाहिये —मनसा वाचा कर्मणा अपने पति पर ही अनुरक्त तथा मुग्ध रहना चाहिये।

यदि माता सुशील, शान्त, ज्ञानी, धर्मनिष्ट और उत्तम गुण तथा विचारवाली होगी तो उसके बच्चे भी भाव भाषा तथा रूप-सौन्दर्यमें अद्वितीय होंगे। इसके लिये यह आवश्यक

है, कि स्त्रियोंको गृहिणी या माता होनेके पूर्व ही इन बातोंकी सम्पूर्ण रूपसे शिक्षा दे दी जाय। स्कूलोंमें अध्यापिकाओंका और घरमें माताओंका यही प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिये। यदि कन्याओंको इस बातकी शिक्षा न दी जाय तो वे इन बातोंको कैसे समझ सकती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि कन्याओंको इन बातोंकी शिक्षा देनेमें माता पिताको संकोच मालूम होगा, परन्तु शिक्षा न देनेसे जो भयंकर परिणाम होता है, भविष्यकी प्रजा जिस प्रकार बिगड़ती है, उस पर ध्यान रखते हुए इस संकोच भावको जलाञ्जलि दे देना ही उचित है।

हमलोग पशुओंकी नस्ल सुधारनेमें बड़े यत्नवान रहते हैं। एक गाय या भैंसका बच्चा हृष्ट पुष्ट और बलिष्ट हो तदर्थ अनेक उपाय करते हैं, पक्षियोंसे अच्छे बच्चोंकी आशा रखते हैं, यहाँतक कि फल फूल और वृक्षों तकको सुधारनेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु कितने दुःखकी बात है, कि मनुष्य, जिसका शरीर परमात्माका निवास स्थान समझा जाता है, संसारके प्राणी मात्रका कल्याण जिस पर अवलम्बित है और सृष्टिका समस्त सञ्चालन भार जिसपर निर्भर करता है, उसके सुधारमें हम उदासीनता प्रदर्शित करते हैं। हम यह चाहते हैं, कि हमारी सन्तान सुन्दर, गुणवान और हृष्ट

पुष्ट हो, परन्तु तदर्थ कोई चेष्टा नहीं करते। यह कैसी विचित्र बात है, कैसा विषम व्यापार है!

हमलोग सन्तान सम्बन्धी समस्त बातें दैवाधीन समझते है। कहा करते हैं, कि इसमें हमारा कोई वश नहीं, परन्तु वैज्ञानिकोंने यह बात भलीभाँति प्रमाणित कर दी है, कि माता पिता ही बच्चोंके जन्मदाता—उनके रूप गुण और भाग्यके निर्माता हैं। यदि स्त्री और पुरुषोंने अपना कर्तव्य न समझा, उन्हें इस बातकी शिक्षा न मिली और भाग्य भरोसे ही सन्तानोत्पत्तिका काम चलता रहा, तो कौन कह सकता है, :कि हमारी सन्तान कैसी होगी। हम तो समझते हैं, कि यही हाल रहा तो जिस भारतकी मातायें राम, कृष्ण, ध्रुव और प्रह्लाद जैसे पुत्रोंको जन्म देती थीं, उसी भारतकी मातायें कुछ ही दिनोंमें राक्षसोंको जन्म देने लगेंगी। जहाँ देव उत्पन्न होते थे, वहाँ दानव उत्पन्न होने लगेंगे। ऐसी हीन सन्तान उत्पन्न होने लगेगी, जिसके रूप और गुणोंको देख उन्हें दानव कहनेके लिये हमें बाध्य होना पड़ेगा। उस समय भारतवर्षमें हाहाकार मच जायगा और वात्स्यायन मुनिको इस विषयकी शिक्षा देनेके लिये पुनः अवतार लेना पड़ेगा। परन्तु हम आशावादी हैं। हम वर्तमान दशाको देख निराश नहीं

होते। केवल इतना ही कहते हैं, कि भारत इस विषयमें भी पिछड़ा जा रहा है। साथ ही हम जानते हैं, कि संसार परिवर्तनशील है। जो आज है, वह कल न रहेगा। :भारत आज पिछड़ा हुआ है, तो कल सर्वापेक्षा आगे बढ़ा हुआ भी दृष्टिगोचर हो सकता है। ईश्वर करे, भारतका वह सुदिन शीघ्र आवे।

आवश्यकता केवल इस बातकी है, कि लोगोंकी रुचि इस विषयकी ओर आकर्षित हो, लोग इन बातोंको भली-भाँति समझें और इनपर विचार करें। माता-पिता अपने बच्चोंको इन बातोंकी शिक्षा दें और दिलावें। विवाहित सज्जनोंको चाहिये, अपनी गृहदेवियोंके हाथमें इस विषयकी पुस्तकें दें ,और यदि वे पढ़ी-लिखी न हों, तो स्वयं उन्हें सुबोध भाषायें यह विषय समझायें और इन बातोंका महत्व बतलायें। यदि वे इस शिक्षाकी उपेक्षा करेंगे, तो निःसन्देह भारतकी भावी प्रजाके भाग्यपर कुठाराघात करनेके दोषभागी होंगे।

स्त्रियोंको आरम्भसे ही सच्चरित्र होनेकी चेष्टा करनी चाहिये। तदर्थ उन्हें राम, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र, ध्रुव, श्रीकृष्ण, प्रह्लाद, सीता, सावित्री, शैव्या आदि चरित्रवान स्त्री पुरुषोंके चरित्र पढ़, उनके उत्तम गुणोंको धारण करना

चाहिये। काम, क्रोध, द्वेष, वैर, विरोध, क्रूरता, छलकपट, हिंसा, अनीति और ऐसी ही निन्द्य बातोंसे सर्वदा दूर रहना चाहिये। ऐसे शब्द न कहें, जिससे हृदयपर बुरा प्रभाव पड़े। जहाँ भय हो, वहाँ न जायें, वैसी चीजें न देखें—देखनेकी इच्छातक न करें। विकारोत्पादक भोजनका त्याग करें। रजोदर्शन और गर्भावस्थाके नियमोंका यथाविधि पालन करें और घरमें सुखोपभोगके उपकरण सुशोभित और स्वच्छ रक्खें। चित्र केवल वही रक्खे जायं, जो रूप, रंग, गुण और बुद्धिमें श्रेष्ठ व्यक्तियोंके हों, सुन्दर देव-देवियोंके चित्रोंको भी स्थान दिया जा सकता है। वन, उपवन, लता, लतागुल्म और वृक्षादिकके मनोमुग्धकर सुन्दर चित्रोंको विशेषरूपसे स्थान देना चाहिये, क्योंकि उनको देखनेसे चित्त प्रफुल्लित रहता है। यदि स्त्रियाँ बाहर निकलें, तो उन्हें मनचले नवयुवकों या चित्त खराब करनेवाली वस्तुओं-की ओर दृष्टिपात न कर, प्राकृतिक दृश्य देखने चाहिये।

गर्भधारणके समय तथा गर्भावस्थामें स्त्रियोंको अपने पतिके ही रूप और गुणपर मुग्ध रहना चाहिये। यदि पतिमें कोई दोष हो, तो उसे सर्वथा भूल जाना ही श्रेयस्कर है। हाँ, यदि पतिकी इच्छा हो, कि पुत्र किसी महापुरुष या महात्माके समान हो, तो पतिकी आज्ञा प्राप्तकर स्त्रीको उस

पुरुष या महात्मामें अनुरक्त रहना अनुचित नहीं, परन्तु यह कार्य पतिकी सम्मति, इच्छा और आज्ञाके बिना कदापि न होना चाहिये। गर्भाधानके समय ऐसी मनस्थितिका होना परमावश्यक है। इस उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये पति अथवा उन महापुरुषोंके चित्र ऐसे स्थानमें रखना चाहिये, जहाँ सदैव दृष्टि पड़ती रहे। साथ ही मनमें यह इच्छा करते रहना चाहिये, कि मेरे ऐसा ही गुणवान, बुद्धिमान और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हो। इस प्रक्रियासे मनचाही सन्तान उत्पन्न की जा सकती है। अपने बालकोंको सुन्दर और भले बनाना यह स्त्रियोंका परम कर्तव्य है। इससे सखी सहेलियों तथा जनसमाजमें उनकी प्रतिष्ठा होती है और उस प्रतिष्ठाके कारण स्वयं उनका भी चित्त प्रसन्न रहता है। अतः स्त्रियोंको इन नियमोंके पालनमें सदा दत्तचित्त रहना चाहिये और पुरुषोंको उनके इस काममें सब तरहसे सुविधा कर देनी चाहिये। यदि संसारमें स्वर्गका दृश्य उपस्थित करना हो, अपनी गृहस्थी सोनेकी बनानी हो, तो इस मूलमन्त्रको सदैव स्मरण रखना चाहिये।

छप रहा है ! छप रहा है !

शीघ्र प्रकाशित होगा—

दाम्पत्य ग्रन्थावलीका द्वितीय पुष्प

जनन-विज्ञान ।

स्त्रियोंका रज और पुरुषोंका वीर्य क्या है, उन दोनोंके संयोगसे किस प्रकार गर्भ सञ्चार होता है, गर्भ किस तरह बढ़ता है, नव महिने पूर्ण होने पर किस तरह बच्चेका जन्म होता है, एकसे अधिक—दो, तीन, चार या इससे अधिक बच्चोंका जन्म क्यों और किस हालतमें होता है—इन सब बातोंका इसमें बड़ा ही रोचक वर्णन दिया गया है—गर्भमें लड़के लड़कीकी पहचान, गर्भपात होनेका कारण, मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेके तरीके आदि सभी बातें सरल भाषामें समझा दी गयीं हैं। गर्भिणोको गर्भ संचार होने पर किस तरह रहना चाहिये, क्या खाना पीना और सोचना चाहिये इत्यादि बातोंपर भलीभाँति विचार किया गया है। साथ ही गर्भ संचार होनेके समयसे लेकर बच्चेका जन्म होने तककी उसकी प्रत्येक अवस्थाके हाफटोन चित्र भी दे दिये गये हैं। पुस्तकका मूल्य अढ़ाई या तीन रुपये होगा, परन्तु जो लोग इस कुपन पर अपना नाम व पता लिख भेजेंगे, उन्हें पौने मूल्यमें मिल सकेगी। आज ही इसे एक लिफाफेमें बन्द कर—“सञ्चालक, सरस्वती सदन, १२।१ चोरबागान लेन-कलकत्ता” के पतेसे रवाना कर दीजिये। ऐसा सुयोग फिर न मिलेगा।

सुप्रसिद्ध पाठक एण्ड कम्पनी की,

उत्तमोत्तम पुस्तकें।

वारांगना-रहस्य।

यह पुस्तक साहित्य-जगतका श्रृङ्गार, उपदेशोंका आगार, चरित्र सुधारनेका जागता हुआ मन्त्र, स्त्री-शिक्षाका स्वतः सिद्ध तन्त्र और समाजको एक महान विपत्तिसे बचानेवाला अद्भुत ग्रंथ है। सर्वनाशिनी वेश्याओंकी शिक्षा, तालीम, उनके प्रत्येक भेद, पुरुषोंको फसानेके लिये किस स्थानपर कैसे कैसे शस्त्रों-का प्रयोग करती हैं, किस इच्छासे क्या भाव बताती हैं, कैसे कैसे दुष्कर्म्म करनेके लिये सदा तय्यार रहती हैं, जवानीकी अवस्था बीत जानेपर भी कैसे कैसे षड्यन्त्र रचकर अपनी मौज निबाहती हैं, जितना इनमें भेद है उन सबको, एक देश-प्रेमी वेश्याने अपनी जीवनीमें कहा है। साथ ही सती-साध्वियां किस तरह अपने पतिकी रक्षा करती हैं, कैसे विपद्-कालमें क्षण-क्षणमें वे अपना सर्वस्व अर्पण करनेको प्रस्तुत रहती हैं, विलासी, कामी वेश्यासक्त पुरुषोंकी कैसी अवस्था रहती है, विलायती वेश्याएँ अपना जाल किस चातुरीसे फेकती हैं प्रभृति सभी बातें इसमें लिखी हैं। यदि आप स्त्री-समाजका वास्तविक दृश्य देखना चाहते हों, यदि वास्तवमें अपनेको, अपने परिवारको और अपने देशभाइयोंको सुखी किया चाहते हों, तो इसे स्वयं पढ़िये, अपने

मित्रों और आश्रितोंको मुफ्त पढ़ाइये और यदि आप धनी हैं, ईश्वरने शक्ति दी है तो इसे यथासामर्थ्य खरीदकर बँटवा दीजिये। आपका मंगल होगा, पुण्य होगा और आपके देशभाई एक भारी विपत्तिसागरसे बच जायँगे। सुन्दर चित्रों सहित ६ भागोंमें ४॥) सजिल्द ५)

अधिक खरीदनेवालेको सस्ती दरमें मिलेगी।

पृथ्वीराज।

महाराज पृथ्वीराजका शहाबुद्दीनसे अनेकानेक युद्ध, भोलाराय भीमदेवकी कूटनीति, मेवाड़पर आक्रमण, सारुण्डाकी भीषण लड़ाई, आबू पर्वतका युद्ध, दिल्लीके राजा अनङ्गपालका अद्भुत चरित्र, माधव भाटका छल, पृथाकुमारी तथा समरसिंहका विलक्षण प्रेम, शशिवृता, इच्छनकुमारीका प्रेम, जयचन्दका हठ. राजसूय यज्ञ, यज्ञके बाद ही संयोगिताका गायब हो जाना; कालिञ्जरपर चढ़ाई, थानेश्वरमें हिन्दू मुसलमानोंका भयानक युद्ध संयोगिताका प्रेम, रानियोंका पातिव्रत आदि इतनी घटनायें सप्रमाण लिखी गई हैं, कि पढ़कर तबीयत फड़क उठती है, यह पुस्तक प्रत्येक मनुष्यको अवश्य पढ़नी चाहिये। कई चित्रोंसे सुशोभित सुन्दर पुस्तकका मूल्य १।) सजिल्द १॥।)

अभिमन्यु-चरित्र।

महाभारतके जिस छोटेसे वीर बालकने अपने पराक्रमसे बड़े बड़े महारथियोंके छक्के छुड़ा दिये थे। द्रोणाचार्य्य जैसे शस्त्र

निपुणने भी जिसकी युद्ध-कलाकी प्रशंसा की थी, जिसने उनका रचा व्यूह भी भङ्ग कर दिया था ; यह उसी वीर केशरीका जीवन चरित्र है। मूल्य ।)

उद्भ्रान्त प्रेम।

यह वही ग्रन्थ है, जिसको अपनी स्त्रीके वियोगमें लिखकर लेखक अमर हो गया है। इसमें प्रेमकी महिमा, प्रेमका रहस्य, प्रेमकी लीला, प्रेमके साथ ही साथ वैराग्यका उत्पन्न हो जाना ; श्मशानमें, पूर्णिमाका चन्द्र, गङ्गातट, प्राणोंका व्यवसाय, नव-वसन्त, शयन-मन्दिर, आदि ऐसे ऐसे विषय दिये हैं, ऐसी सरल भाषामें प्रेम रहस्य समझाया है, कि पुस्तक पढ़कर लेखकका हाथ चूम लेनेकी इच्छा होती है। मूल्य ।।।)

नन्दनभवन।

सावित्री नामकी एक परमा सुन्दरी कन्याका बल्लभदासके प्रेममें मुग्ध होना, दुष्टोंका उसको अपने जालमें फसानेकी चेष्टा करना, चन्द्रभागा नामकी एक दूसरी रमणीका भी बल्लभदासपर आसक्त होना ; अभिमन्त्रित यन्त्रका फल, प्रेमके कारण एक मनुष्यकी हत्या होना ; एक निरपराधीका फसना, वकीलोंकी चाल आदि ऐसी ऐसी घटनायें लिखी हैं, कि पढ़कर मुग्ध हो जाना पड़ता है। मूल्य ।।=)

भीमसिंह ।

भीमसिंह ऐतिहासिक उपन्यासोंका राजा है। अलाउद्दीनकी चित्तौड़पर बारह चढ़ाइयोंका पूरा पूरा हाल, राणा लक्ष्मणसिंहका बारह राजकुमारोंके साथ प्राणाहुति देना, अलाउद्दीनके वजीरकी कन्या नसीबनका अद्भुत रहस्य, बारह वर्षके बालक बादल तथा ६० वर्षके वृद्ध गोराका अद्भुत युद्ध-कौशल, राणा भीमसिंहका विलक्षण त्याग, महारानी पद्मिनीका हजारों राजपूत बालाओंके साथ सती होना आदि ऐसी ऐसी घटनायें लिखी हैं, कि पाठक दङ्ग हो जायँगे। कई सुन्दर चित्रोंसे सुशोभित पुस्तकका मूल्य १॥) सजिल्द २)

सिकन्दरशाह ।

जिस वीरने अपनी प्रबल प्रतिभासे थोड़े ही समयमें थोड़ीसी सेनाके साथ ग्रीससे लेकर सुदूर भारतके पञ्जाब प्रदेश तक अपना अधिकार फैला दिया था; यह उसी प्रतिभाशाली युद्ध कुशल वीर सिकन्दरका पूरा पूरा जीवन चरित्र है। इसमें ग्रीस देशकी शिक्षा, टायरीका युद्ध, फारिसके राज दरायुससे भीषण समर, थेबका दमन, डार्डेनैलीसपर चढ़ाई, केरियाकी भीषण लड़ाई, दाराका पतन, अनुपम सुन्दरी दाराकी कन्याका सिकन्दरसे विवाह, सिकन्दरका सैकड़ों स्त्रियोंके बीच रहकर अधःपतन, आम्भिका सिकन्दरकी वश्यता स्वीकार करना, आदि ऐसी ऐसी घटनायें लिखी हैं, कि पढ़ते पढ़ते मुग्ध हो जाना पड़ता है। बड़ी ही सुन्दर सुन्दर कई तस्वीरें भी दी गई हैं। मूल्य १॥=) स० २=)

अँगरेजी शिक्षावली—

बिना उस्तादके अँगरेजी सिखानेवाली ऐसी कोई पुस्तक आजतक नहीं बनी। आप इसको लेकर इसके सहारे बिना परिश्रमके इतनी अंगरेजी सीख जायँगे, कि रेल, तार, डाक वगैरहके सब काम चला लेंगे, यहाँतक कि आपको अच्छी तौर पर अँगरेजी-की पूरी लियाकत हो जायगी। अन्य समस्त पुस्तकोंसे इसमें विशेष सुविधा यह है, कि इसमें अँगरेजी व्याकरण भी अच्छी तरह समझा दिया गया है इसमें सब प्रकारके जीव, फल, मनुष्य, व्यापारी, धातु, कामके शब्द व्यापारी शब्द, तार लिखनेके शब्द, चिट्ठियोंके कायदे आदि सभी बातें दे दी हैं। मूल्य १।)

ध्रुव-चरित्र।

जिस बालकने अपनी माताके दुःखसे दुःखी हो, विमाताके सन्तापसे सन्तापित और दुर्व्यवहारसे कष्टित होकर, बालकपनमें ही जङ्गलकी यात्रा की थी, अपने परम विश्वास और असाधारण भक्ति-महिमासे परमात्माका दर्शन प्राप्त कर लिया था—यह उसी परम भक्तका पूरा और सचित्र जीवन चरित्र है। मूल्य ॥=)

पुस्तक मिलनेका पता :—

पाठक एण्ड कम्पनी

१२।१, चोरबगान लेन, कलकत्ता।